सप्तम अध्याय

युफी प्रप पद्धति और कृष्ण मुक्त कवियों की प्रप पद्धति में

वास्तव
शूरी प्रेम पद्धति और कृष्ण मक्त कवियों की प्रेम-पद्धति में धार्मिकः

लूकियाँ तथा देव्यास युक्त मक्त कवियों ने प्रेम मार्ग की ही इेस्वर धार्मिक का साधन बनाया है। पण इेस्वर सम्पन्न धार्मिक धार्मिक के कुयार दोनों के प्रेम के स्वरूप में कुयार कश्य वायस्या है, परंतु मुख्यः मार्ग स्वस्त होने के कारण दोनों की प्रेम-पद्धति में साधन की दृष्टिगत होता है।

लौगिक प्रेम की लौगिक प्रेम में परिणामः

अतां और व्यक्त में प्रति विश्वास का मार्ग बास्क बो सकता है तात्पर्य प्रेम का नहीं । वाचार् चुकल ने कहा "काथम में रहस्याद " नामक पुस्तक में ( पृ १२ ) इस मानना को व्यक्त किया है। उनकी यह धारणा किसी सीमा तक सही भी है बल्कि व्यक्त में प्रति प्रेम ही ही नहीं सकता । व्यक्त में के व्यक्त प्रतीकात्मक तत्त्व पाठ एवं व्यक्तिफलक धारा यह भूमित ही सकता है। व्यक्त में का अभिव्यक्तिकरण ही लौगिक प्रेम के रूप में परिणाम हो जाना है परंतु यह लौगिक प्रेम व्यक्त का व्यक्ति के लिए लाभार्थयुक्त सुधिक उसके व्याख्यात प्रेम का स्वरूप है। कल: लौगिक प्रेम में भावात्मात्मिक विधि है। शीत के माध्यम से ही क्षण की कल्पना स्वरूप है। लौगिक प्रेम उपदार्शित नहीं, तथियत लौगिकता, लोकात्मक और माध्यमूक उपदार्श के योग्य है। इतिहास खुशाल मयागं में व्यक्त के प्रेम को प्रक्रिया किया है जिसमें व्यक्त का आत्मात्म और
परिमित विस्तार है। प्रेम के अव्यक्त स्वरूप की व्रतिभक्ति ही व्यक्ति
के प्रेम के स्वरूप में हुई। उस अव्यक्त स्वरूप का व्रतिभक्ति का मानवीय प्रेम
ही पूर्ण विकास पाकर हंसवीरिय प्रेम में परिवर्तन की जाता है।

हुक्कियां तथा पूर्ण मकछुन कवियों की यही सामान्यता
धारणा है। इसके बाद ही इसके कवियों का प्रेम धीमा है,
जो गृहीत कराया का डूंढ विश्वास है। हुक्कियां वातावरण प्रेम और रूप का निर
स्थापना स्वीकार करते हैं। कहीं इसके हुक्कियां के प्रेम का वानियां
विधित है: रूप दर्शन या गृहीत दर्शन में पाना जाता है। यह रूप दर्शन स्वरूप
में, विचार में और किसी किसी साहित्य मिलने के रूप में भी हुआ है और हस्तक
आधार उन्नीत मानव की मान्यता है। मानव निश्चित हुक्कियां ने प्रेम के पूर्ण माना
है, हंसवीर की प्रकृतिकर्म है, इस कारण उसमें ही हंसवीर के गृहीत विश्वास है।
प्रकृतिकर्म के अर्थ ही उसके मूल को प्राप्त किया जा सकता है। कर: हुक्कियां
ने हंसवीर प्राप्ति के लिए मानव को हुना। परंतु अन्य वैदिक सौंदर्य से पूर्ण है
और मानव उस वैदिक का विनिमय ग्रहण करता है। यही विनिमय उस हंसवीर के अप्रतिम
सौंदर्य का परिवर्तन है। इस परम अव्यक्त का नाम गृहीत हुक्कियां ने अपने कार्य
में स्थान स्थान पर किया है। महाकवि जायसी ने अपने फलमाण में फलमाणी
के अन्तर्गत सौंदर्य का वर्णन किया है।

ॐ भैन जो देशा ऋषित भा., निरंगत नीर धरीर।
हंसत जो देशा हंस भा., व्योमि दहल ना होर।।

- जायसी गृहीत- वाचायं शुक्ल -२०२४
** सर्वर अप विमोहक, हिंदु हिलोराहिं देख।
पाव हृवी महु पावो, एहिमिदि तहरहिं देख।**

- छात्रा प्रज्ञाली - कङ्गाय शुक्ल - ४० रू

** धूर्फी तन मृगण मये इसिदीय बींड्रीय को मस्त
शुक्ल में व्याप्त देखे हैं। उर्म कन्धा बींड्रीय अप परम्परा का बींड्रीय धूर्फी
जगत में परिपात्य हैं। हृवी, जन्त्र, नरात्र सभी उस ज्योतिमण्डल की ज्योति
के उपालित हैं। यही अप स्त्रिया, सभी वस्तुओं में विषमान हैं।

** यही अप भाषु भी मेृता, यही अप जम हूँ नरात्र।**
यही अप गतिक पर, यही मरि पाताल जन्त्र।
यही अप भेंट तर है, मानसिक देखिया यही हवाय।
यही अप भाषु हूँ मृता, यही अप जैसि माता कृपा।
यही अप सिङ्ग नैन्द्र ज्योति, यही अप सिङ्ग सरात गोली।
यही अप सिङ्ग मृदुसन्द्र वाता, यही अप सिङ्ग मृता बराता।****

** प्रेम के स्वरूप के अवकाश के छेद ही धूर्फियों ने
परम सत्ता को क्षण क्षण में व्याप्त दिखाया है। जीव जो स्त्री और नूतन
के सुख है उस कल्याण और वृद्धि अभिज्ञ को प्राप्त करना चाहता है जिसका यह
विन्दु-स्त्रोत है।

** इस राग से धूर्फियों का प्रेम लोकिक पदा है वलाकि
पदा की वीर अध्यात्म होता है। व्यक्ति विशेष के प्रेम में पदक ही धूर्फी**

-----------------------------------------------------------------

१- महुमाली - मृगण - ५० लिंगोपाल रस - ४० रू
परम प्रेम का कुदरत तथा हुसैन के तुरात का खालास करते हैं। उस खालास के देख वे ज्ञि की कपने प्रेम का प्रमुख स्वरूप करते हैं। बुधवार बुधवार का प्रेम का रूप है कि खालास कहीं अन्य रूप में दर्शन नहीं देना, ज्ञि रूप में ही उसका खालास करते हैं।

बुधवार रूप को फलता देना करते हैं और ज्ञि को रूप का खालास देने हैं। क्योंकि ज्ञि का खालास होने पर हम स्वरूप ही उसकी रूप का खालास होता है और यह अवकाश बनाता है कि खालास होने पर खालास का रूप होता है। ज्ञि करण है कि ज्ञि रूप के लिए बुधवार के खालास का प्रेम करते हैं। बुधवार बुधवार का प्रेम वस्तु को प्रेम का खालास देता है। बुधवार बुधवार का प्रेम का खालास नहीं है।

बुधवार प्रेम स्वरूप में वस्तु का प्रेम खालास प्रस्तुत है। नायक नामिक रूप से प्रेम का प्रेम का प्रेम होता है और वह रूप का प्रेम का खालास नहीं है। बुधवार बुधवार का प्रेम का प्रेम का प्रेम होता है और वह रूप का प्रेम का प्रेम होता है।

र—The Mystics of Islam by R.A. Nicholson pp 109, 110
लतिध होती है। साधक दृष्टि के धीरदंब की देखकर ही कुश्य के रूप का स्पर्श करता है। इस प्रकार फलसे यह दृष्टि रूप की सी कारण बनानी होता है और फिर इसके संशोषण की ओर—

१ जैसिक सन्ति का छिद हैनिकारा।
हुई सब हौसली विनधन हारा। २

क्योंकि दृष्टि के प्रधानक का मूल कारण रूप बालदपि है जो शस्त्रान: सुना के दूर की ओर सीटक करता है। एस्सरीय साधक की क्रतारण उभिष्ठ दृष्टिकार्य के नाकाशायों के साधारण है की है। इसलिए धीरदंब ही वापसी को साधन की ओर प्रवेश करता है और अन्य में ही वासिक की साधना उसे रस्ता से आसार में बल्लिपन कर देती है। कहीं कारण है कि दृष्टि महाकृतियाँ जायसी स्त्रीको पदार्थके के कल्ल के गोपी अन्ध को ही एक बुद्ध कदम निवंदित माना माना तथा है।
पदार्थको और रहस्य की कहानी केवल नाम के लिए कहाणी है। वास्तव में न कोई पदार्थकी स्त्री है और न रहस्य राजा। सम्पूर्ण क्षामक वाण्यक्षलिक है विशेष निवेश तरीक है, रहस्य राजा है, विषेण अज्ञात है और पदार्थकी धृष्टि है।

२ नन भिन उर मन राजा कोर्नास, छिद विन्ध दृष्टि पदार्थकी चोर्णा।
गुरू सुना जैही पै हिताभ, बिनु गुरू जन तो निमनु पाया।
नागमती यह दुनिया धन्या, बाँधा घोड़ न रही बिपु जंगा।
राजधून घोड़ वैचार, माया कमानी नूतान। ३

—- चित्राश्री— उक्तिनाख
—- जायसी प्रवाहानाथ— ६० वाचनाय रामस्मय शुक्ल— पृ ३०१
इसके अनिवर्ण क्षणों के मध्य में भी क्षण पानी हो जायेंगे क्लासिकल दीर्घ की बारे में कहा गया है। शिबकुल गह वे बनने वाले सदन में वे कहते हैं।

** बौद्ध पाँच यह क्षण शुमा,
सो नहीं वाद सो सो यह शुमा।**

शूरक्षণों के समान भूल वेष्ठाव मनुष्य कह भी क्लासिकल प्रेम की मायिक के लिए क्लासिकल प्रेम की व्याख्या स्वीकार करते हैं।

कहरिया बम्बरदाय वाले वेष्ठायों की धारणा भूक सोर निमात की है। वे क्लासिकल प्रेम मायिक के हेतु पक्षपात मानते हैं।

कामि वल्लम अक्षुन्न के कुनातियों ने स्वर्गीय ये बादश को स्वीकार किया है परन्तु व्याख्यातार तोत्र में हेतु पक्षपात मानता है मनुष्य वेष्ठाव साता के प्यार किये जाते हैं। तभी तो शांत निस्संदेह में वृद्धि के महत्व स्वर के जाग्रत पर गोष्टिक-कार्यों का समस्त गृह-कार्यों का परिप्रेक्ष्य कर वायर मन्दिर का उल्लेख करते दिखता उद्देश्य पर जा पहुँचता है। यूर ने अभिसन्धि क्षय का वर्णन नहीं मनोरंजक शब्दों में किया है।

** जबर्दस्त नन पूरी धर्म परी।
क्षन मई गोप कल्यण सब काम धाम विविधी।
क्षुल महाद वेद की बाण नक्पुर नार्द्धि हरी।
जो वेद मन्न चली तो अभिश, निम्न वन, धर्म, तरी।
क्षुल पल्लि वन, मनान, जन निद्ध, वण्ण नार्द्धि करी।**

---
1- जाप्पी श्रीपाली- वाड़नय रामचन्द्र शुकल- प्र. १९६९
2- मंगलवरु शर्म- बलदेव उपाध्याय- प्र. १९३१
3- यूर गांगो- नागरी प्रचारिणी श्री, प्र. १९६८
उबल गौति में ब्रुर ने कूल परस्पर , वैद की बाजार ,
गुन - पति-सेह , मध्यन जन सक्ता वादि के परिवर्तन का उलटो भिसा है।
वह परस्पर प्रेम की ही ज्यादा करता है। गोपिया जी के दृष्टि संकार में
स्थान कर रही थीं वह वैष्णव वान में स्वरुप के कहीं की वाणिज्यिकता की
बार ला गई। गोपिया का श्रीकृष्ण के समीप जाना व्यावसाय क्षमा में वी-वाना का प्रस्ताव की बार उन्मुक्त होता है। राधलला लौकिक प्रेम में
केन्द्र ने लोल अनी बौद्र में मिलन का मिलन होता है। परंतु लौकिक प्रेम में श्रीकृष्ण का प्रस्ताव है और राधा तथा गोपिया की जीवनाः। वृणदावन सद्यगति
केन्द्र में अपना और प्रस्ताव का मिलन होता है। पूरी की भी
वाणिज्यिक प्रेम में प्रस्ताव का शब्द रूप मानता है। राधलला के केन्द्रीय ही
पालिकार, बोसरण, और दान वीला को भी भावना कर ने वाणिज्यिक
समूह प्रस्ताव किया है। लौकिक प्रेम में कथिन, जीवन-मार्गों के अस्थाय पृथिवी
का फल है। मण्डल में के सब संस्कृत पर अनुशासन है। केन्द्र प्रेम चीर हरण
वीला, आत्मा का माता के समस्त वाणिज्यों के रहित कोफ कर प्रस्ताव के
मिलन है। केन्द्र समर्पण को मानता है, जिसमें उनका कूल भी नहीं रहा , सबसे
प्रेम के वर्णण ही बात है।

बह प्रेम वैष्णव प्रेम के विवरण में यो लौकिक प्रेम
होने के लौकिक प्रेम को वर्णण की है। बह प्रेम को निरंतर हुवा सम आतान
करने के लिए ही वर्णित जमादाय वालों ने पक्षयों के पाव को कपोल काव्य
में स्थान दिया है। महानार, विष्णु पुराण र्या हरिवे गुराण में कृष्णा
की विषयों के नाम स्थान दिये हैं, पर उनमें राधा का नाम उलकलित है। तो
बहा राधा पक्षया है ! ब्रुर राधा को पक्षया मानने के पता में नही।
उन्होंने श्रृङ्खला में राधाब और कृष्ण का विवाह बही भूखधाम के कारण है। परन्तु कहीं कहीं वे कैलाश समुद्रताप वालों के भी मानविन जान पड़ते हैं। जैसे स्वकृष्णा और परकृष्णा दोनों शब्द लोकिकता के ही भूख हैं और तथ्याव समस्तार्थों में बड़ा लक्ष्य स्वकृष्णा और परकृष्णा का वास्तव स्रोतित है। कहाँ 'पर राधा-कृष्णा' और 'गोपियाँ' का आधार ग्रहण कर लौचकिक प्रेम की कल्पित स्थिति में दालने का प्रयास किया है। परन्तु जैसाने पक्षने और 'दुनिया' के प्रेम में कहाँ पर हूँ जैसाने है। दुनिया ने जहाँ कल्पित प्रेम भास्तिक के हेतु लौचकिक पाठकों को चुना है वहाँ कृष्ण कम्पनी ने अपने पाठकों को कल्पितता प्रदान की है।

शास्त्र धार्मिक निरेखण :

दुनिया लता कृष्णा भक्त दोनों ही प्रेम के समान धार्मिक कर्मकाण्डों को व्यक्ति मानते है। दुनिया दुःख की जूति या कल्प के परिसमाजन की महत्वपूर्ण मानते है। सारे कर्मकाण्ड, भविष्य, मानवता या जुड़ाव विलास का परिवर्तन कर वे हृदय में निरन्तर प्रियतम का ही ध्यान किया करते हैं। हृदयस्थल प्रियतम की पूर्णता के ये क्रम क्रम में व्यापक होते हैं। हृदय और नेत्र का पूर्ण में उन्हें कोई वन्तर नहीं दिसाई देता। यदाः

"जब यह मूर्ति हिर्य समानी। दुःख कहाँ बिलुके जानी।
जो मन बीच नैन में बोई। कहाँ ली भोच दुःख कोई।" ॥ १

सबका, मदनी जाना, का करता और नमाज पहना
वादि कार्य कर्मकाण्ड व्यंजन है, यदि हृदय शुद्ध नहीं है। शुद्ध हृदय के आर

१- दुर सुहम्मद- कहाण वांजुरी- मु. १३४
पास सवा का ध्यान नहीं किया जाता जो परम्परा को कहुकस्या प्राप्त नहीं हो सकती। कैसे करकमाण्ड ही में रूप घने वाला व्यक्ति उस सरीत दार के संगमन है जो किसी भी मूल्य पर कर्म की प्राप्त नहीं कर सकता।

"मके गए, हुज्ज कर वार। कपटि मन फर झा लाए।
मके नार्थ मदोने जार्थ। सरीफेसर रस का ना पर्वे।" ॥

जान, ध्यान, जप, तप, नियम और संयम सबका महत्व प्रेम के समान है। सौरभ में वही व्यक्ति श्रेष्ठ है जो प्रेम का प्रतिपाल करना है:

"जान ध्यान मदिम सर्वे, जप, तप, संयम प्रेम।
मन सौं उच्च जगत जन, जो प्रतिपाद प्रेम।" ॥

हाँ, प्रेम की ही धर्म, धर्म, यहाँ तक कि सौरभ का बाध्य मानते हैं। कबादित की कारण चावखी प्रेम को स्वर्गापन के विषय में अम्मी धारणा व्यक्त करते हैं:

"तीन लोक चौध लइ, धर्म परिवार हुफिन।
प्रेम कौटि हार तीन कहूँ, जो वेसा मन हुफिन।"

अब प्रेमी को वह प्राप्ति के मार्ग में न पता रहना है और न लप्खा।

= = = = = = = = = = = = = = = =

1- केश रहिम, प्रेम रह।
2- उस्मान- बिद्राचली - पृ 226।
** दर सम्य नहीं दुवी गंवानी। दैसे किंगु न जाग के पानी। ** १

इस प्रकार सब भ्रम का स्थान संतरोंकुड़े है। उसकी मात्र भावना भावीरी की मैं तिस समस्त पानी का प्रवालन करते वाली है-

"" उच्च उत्कृष्ट भ्रम का जो रहिम लग हो।
जो पाने स्वतंत्र नहीं, जाग पान सब घोय। "" २

पुकार के क्षेत्र इसमें भ्रम के उपर सा जाने पर स्वर का समस्त शान दुख हो जाता है। कहा तक कि डेव गुरुण का जन हो के बारे काफिला कपोल कट बैठे होते है। भ्रम के जान के इसमें जो प्रकाश होता है उसके समस्त जगत का जल घाय है। भ्रम पद पद व्यक्ति कामी चले का प्राप्त नहीं होता। जानियाँ की वर्त फूल नहीं। भ्रम रोग राजा रोग महुआ है जो कम होते के स्थान पर निरत मृत्यु को प्राप्त होता रहता है:

"" बैठे के इसमें भ्रम परमारा, का बैठे हुदौ शान का आचा।
भ्रम गुरु का जो मा चला, डेव गुरुण बिरि ले भेला।
भ्रम बालका मयौं न जागा, जानिया के जस के महि मंगा।
जगत जान बैठे बागी बेला, भ्रम जान चित करें उंहे।
भ्रम का जान जगत के त्यारा, मिलेंगे प्रभास शान गुरु कारा। ॥ ३

पुकार की साधक, किंगु, किंगु, किंगु, साधक, किंगु, किंगु, किंगु, किंगु, किंगु, निर्मल बादि साधनों।

----------------------------------------

१- फँडमाजन- वारा शाना अवाल- ४९४४
2- शैल रहिम, - प्रभा राम
3- "" ""
को महत्व नो क्षय देते हैं परन्तु वहाँ तक जहाँ तक ये साम्य प्रिय प्रारंभ में बाधक न हैं। प्रिय प्रारंभ में बाधक होने पर दूषियों की दृष्टि में इन साधनों का कोई महत्व नहीं रह जाता। दूषियों को प्रेम को क्षय समाज में सभी समय को उपदानकर स्वच्छन्द रूप से किया को बदला और उसी में स्वच्छ भाषा हो रह जाना चाहिए है।

दूषियों की प्रति व्यक्त व्यक्त कवि यो प्रस भाषा विषय के विषय और कर्म कार्यों को वापस नहीं मानने। उनके निकट भ्रम हो चुके होता योग व नया है। समस्त शैल्प का कृपण मय हो जाना हो वहाँ सच्चा शान है। लोक पर्यावरण की दृष्टि से इस प्रकार के प्रस यो निर्देशी समझा जाता है। परन्तु सामस्या सभी व्यक्त व्यक्त कवियों ने वाच्यात्मक दृष्टि से इस प्रकार के मात्र प्रस को व्यक्त प्रसार को है।

उन्होंने लोक दृष्टि से देखा गया बढ़ता और दुरी दोनों प्रकार के संबंध को पीछे क्षमा करता है। विधि निर्णय के मात्र को उपचार कर वे इस पारंपरिक संसार से ऊचे उठ गए हैं। यही कारण है कि परिवार, समाज और शास्त्र के नियंत्रण यो यदि प्रस प्रस में वाहक हो न हो उनका उल्लेख यी पाप नहीं कहता।

३१.- तिरिक टाटा नन्दन स्वामी वेदशास्त्री जयद सारंग, कौड़ी-सारंग किये वह न्यू रागानुगा मात्रल।

- विकसित चंकवानी, मयनिरक्षर सिता

लत्यानः वीरवर्जी अभियोधक मुखाली जनाविक्रिया।

रागानुगानु ब्रह्मण्यो यो या रागानुगायो।
के पौर होते है तथा जिसें शास्त्र मयादा भी नहीं रहती। रागानिका वाच्य स्वरुप है और रागातुगा शाठन स्वरुपा। रागानिका की प्रभावित हेतु भजनार्थियों का क्वातक बावराक बनाया गया है। कः रागानिका वैर रागातुगा में पूलं: कोई मेद नहीं। रागातुगा मंडल का एक मात्र वाठार भ्रम होने के कारण वहाँ शास्त्री और शुलियों के बन्धन स्वीकृत नहीं है। यह भ्रम सम्मिलित रागातुगा मंडल लोक वैर शुल की मयादा का उत्लौपन कर लोकता के कारण उद्वीद को प्राप्त होती है। कः विरुपेन्द्र पुरुष करणे "वैलंय चन्द्रोदय, नाटक में इस प्रकार का मंडल का निम्न निम्न संबंध में कहते हैं:

"रागातुगा मंडल भ्रम का कलम्ब पाकार विशेषण होने वाली यह नीचे कैलंबी धारा है जो किसी प्रकार का बन्धन स्विकार न करके बांधने वाली प्रत्येक वस्त्र को बहारत से भाँति है।"

राधा वस्त्र वस्त्रदाय में भी भ्रम के समक्ष जागतिक विविध विविधताओं का लम्ब जप, तप, यजाम ही कोई महत्व नहीं। नम वहाँ प्रयोग श्री महाराज में सहायक ही है वाधक नहीं। श्री हिन्दुरिवेश जी के सिद्धांतों के सम्प्रमाण मान्यतार "श्री तेज जी ने अन्य "तेज वाणी" में भ्रम तत्त्व को महान्य प्रकार शाश्व की दृष्टि से निम्न पालन को व्याख्या उपराय है:

"श्री हिन्दुरिवेश जैसी जहाँ भ्रम, नहाँ भ्रम, निम्न संयम नेपाल।" व

---------------------------------------------
1- वैलंय चन्द्रोदय, कः विरुपेन्द्र, तीमार अध्याय स० १६२0
2- तेज वाणी, श्री हिन्दुरिवेश प्राण, श्रीरामकृष्ण सिद्ध, प० १० म० ॥
श्री श्रीमंतसार जी ने बनने यादाश्त यह नामक ग्रंथ में जागरण विधि-विधानों का स्पष्ट लागे से मूल्य किया है। समस्त लोक ताप, कुल मथापता वादि कृष्णकाऩ्द का ही एक लागे है। अतः प्रेम चन्दके पक्ष को इन्हें बोधना बावर्षक है।

** भाषा हो जन प्रेमसहिं साजनि।
कल को प्रेम, पि नेम न विद्वतं, कश फिःि विधि कृतं के काव्य प्रेम गणत गौतित की सब कृतं ज्ञात महं प्राज्ञि।
निकै प्रेम व्यन मोहन में तत्ति के बसिल लोक के राजनि।
हुदय बहुति हरि, नेम गयी ढरि, प्रेम चुमुकी पार पारिवरित विराजनि।

२

उपरी रिप्ण सनिल्लति पानि ज्ञानी बृजना सागर हि सम्पाजनि।
प्रेम पौर निकटे न चत्रजुल मुरलीधर वर कर निवाजनि।

धार्मिक पराप्रेम के विषय में ३०३दास जी का कथन है कि जिस शरीर कृपि बन नेम, प्रेम स्थि कहरीं गधाना है वहाँ नेम स्थि चुमुक, गायक, गोशु, विभाग किस प्रकार बसाय बसाय बना बनाहे हैं। नेम के जाल में उलझे हुर धाम प्रेम पागं पर चरस्कट नहीं दौड़ दौड़े। इस प्रकार प्रेम ने नेम का चक्र उर फिर विवा प्रेम भावना खैब नहीं।

हरिदासी समादाय में प्रेम के लिए हुदय शुद्धि बावर्षक मानों गई है। परन्तु हुदय शुद्धि के निर्णय यहाँ उकालन घोर बन में जाकर

---

1- श्रीमंतसार - गुप्त पी
2- हुदय शुद्धि: श्रीसी चौवनी लीला, गृं ५२, ४६
क्यों साधना की वारस्तहता नहीं वरन् साधन गृह में रह कर घर की तत्त्वज्ञों से उपरम सककर हुदय शुद्धि कर सकता है। स्वामी हरिदास जी का इस प्रकार का जीवन यापन करते थे:

"" पर ही पर बन मयो हूँ, पुलिन विन राख।
बिहारीदास हरिदास को जग मे रहे उदास।"" ४

वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रेम के सम्पूर्ण तत्त्व हापेद
प्रिय का कोई मूल्य नहीं ह। इस सम्प्रदाय की मान्यता है कि निर्विवेच सक्त्वालनन्द प्रम के प्रेम जिन वीधा स्पर्श करता है उन्हा साधन हापेद। प्रिय का हृदय, जान नहीं हापते। प्रिय का हृदय, जान श्रम: ईश्वरीन्मुल करने हैं धर प्रेम से तो तत्कल हो हंसक्क के वामण पुकुल बीवाल्मा परमात्मा का हृदर उन्मुल हो जाता है और नव प्रेम और परमात्मा मे कोई अनुर नहीं रह जाता। बिसने प्रेम को पा लिया उसने प्रियित को पा लिया।
इसी प्रेम के कसी तिरहूँ को गोपिया लोक मधुंदा और शुद्र कालि का उल्लेखन करते हुए दिलार फल नहीं हैं:

"" लोक खूँसूँिं शुद्र कालि नही।
जैसे नदी सिंधु को धारे लैड़े स्याम फरी।
मान पिता बहु त्रास दिलार नेई न हरी लली।
हार्षित्वन कैः नहि लागू कंबुू तू बुद्रि क्रोः।
मानत नहीं लोक मरुखुदा हारिके हैः हरी।
बुद्र स्याम को गली चुना हरिजी ज्वरेःः हरी।"" २

---
1- बिहारिदेव की वापसी, दोहा २७
2- बुद्रहा, दशम संध्व- व० प्र० प० २५४
तब ने और न कहूँ दुहाय।
शुनि ध्यान अबाहि के देई संख्य हवार्बल गाय।
वाकन हुई चली मारा सखी, हैं जने भलाय।
मदन गौपाल देही के ख टक रही की मुफ़्फ़ाय।
सिलेरी तोक ताज यह काजर बन्धु पिला वह गाय।
देस बुझूस मृत गिरिवर धर तन ना तिये दुराय। ** १

कर: वैष्णव मुक्त कवि दी प्रेम के बनना साधन
सापा मृति और जान हो महत्त्व नहीं देन। शृणी और कृष्ण मुक्त
कवि दोनों के ही अनुबाद साधन और कम्हापन प्रेम ग्रामितिमें सहायक
होने पर ही मात्र हैं अन्यत्ता उनका कोई महत्त्व नहीं।

प्रेम में लीलना:

प्रकाशी और कृष्ण मदन दोनों के ही प्रेम में
लीलना पाई जाती है। प्रेम की लीलना को स्वयं रखने के लिए शृणी
मिलने से अथवा विरंग को महत्त्व प्राप्त करते हैं। सब्जा प्रेम से बार उद्पत्ति
होता निरंतर वृद्धि को प्राप्त होता है। मायामें प्रेमात्युक्ति वाकन्यदश
होती है वर्तमान विरंग का प्राप्त पाया होता ही जिन क्षणों की अनुभन्ति होती
है वे प्रेम पार्थ को अत्यन्त दुख बना देते हैं। प्रेम पार्थ की दुरुस्तु उसकी
गति को रौंदब नहीं पाती वर्तमान में नील्ले तो लीलतर और नोलदर हो भी
लीलना बनाती में सहायक होती है। रल्पेन पद्मावती को प्राप्त करते के

** १ - चुनूँद दास- पद संख्य २० ७० ९० ४०
लिए गृह अवस्थान कर देती है। मांग में कोई बाधाओं को भागना करना
पड़ता है पर वे ब्राह्मणों उसके गलती व विचार कारण के बिना उसके प्रेम और दयालुता को भागना कर देती हैं।
वह तो प्रेम-प्रयोग को रेखा अवगाह मानता है कि जिसकी पार कौन खाने
होते-

** प्रेम अस्त्र क्या करेगा। जहाँ न जाय तो नहीं यात्रा।
गौ वह अस्त्र काह रहेगा। जयौ यात्राहृत हृद होर लिये। **

उसी प्रकार मैंने कूल मृत्युमारी में मृत्युमारी की
प्राणी के लिए राजस्व प्राप्त होने द्वारा कूल प्रयाण उसकी प्रदर्शन की
सीखना के ही लिये हैं। प्रेम मांग पर खुशर होने पर राज पात, जीवन,
योगन सिध्दि का भी मोह नहीं रहता -

** राज पात जो परिहरी, जो जीवन लोह।
चढ़ा प्रेम मंग पेशा नहीं उग्र का होह। **

प्रेम की नींवन के कारण प्रेमी को प्रिय का
वियोग फल फल पर दुःख प्राप्त करता है, परन्तु उसकी शानि के बिना
प्रेमी के प्राण प्रयाण नहीं कर जाते कारण उसके प्राण प्रेम के अद्वैत धारणी
में उलझे रहते हैं।

** प्रेम वियोग न भुल सके, मरौं लौ घरौं न जात।
हुज दुर्ग ने हृ खान, दयाल हिया युक्त। **

---

1- फितारवन- विषेष शरण अवश्यक- १४४, १:२
2- मृत्युमारी: मैमन
3- **, १.
बैंगले भी विरह के बिना प्रेम का महत्त्व ही नहीं लाते होते। प्रेम की परम जीवन, गदना और आदर्शता का लाभ आते हैं देवताओं के लिए विरह हृदय दहलने भी शासक है। विरह में ही प्रेम की नोब्रता परिवर्तन होती है। मैथुन के करुणार्थ बिश्व-करुणा में मन देखकर विरह का स्वास्थ्य नहीं किया वह दूसरे गुरू के उस आनंदित के सामने है जो रिखा किसी भी भगवान फिर लौट जाना है:

** मैथुन जो आं जत्मित कि, विरह न कीन्ता चाह।**

शुभे धर का महान प्रेमी कार को यो चाह।****

क्यों? दूसरी कवियों ने यहाँ काव्यों में विरह को अनन्य महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। विरह की महत्व प्रदान करने का एक अन्य कारण भी था। दूसरी कवियों ने कादिक नायक होता प्रसन्नता के प्रति जीवान्त के प्रेम की नोब्रता व्यक्त की है। ऐसी उपस्थित प्राप्ति दस्ते के हेतु उनको हुए उनके क्रियाओं का भी वातावरण प्रभाव किया है। उनमें कमल और कुंभे, सेरा और छोर, तीर्थ और सर्व, तुष्क, और जी, गुलाम और प्रेम नया की राग और एिंगुम गुलाम है। इनके सत्ताओं में दास कलेख़: कथा राजा और साधु के मध्य द्वारा व्यवस्था की सुविधा करता है। सुर्य और कमल में वाकाट का व्यवस्थापन भी उनको प्रीति में बाधक नहीं होता है। अन्य तक प्रेमी का प्रेम को जलने का मनोरथ प्राप्त नहीं होता। अनुसरण के प्रेमी का प्रेम को जलने का मनोरथ प्राप्त नहीं होता। विशिष्ट प्रार्थनाएँ की जलन के द्वारा चांद के प्रेम की नोब्रता ही प्राप्त होती

-----------------------------------------------------

१- मैथुन कृत- महामाली - सैं शिकारीपास फिर - ४० ५३
है। जानिए अपने पद्मावत में इन लोकों के दारा साध्न के प्रेम की वर्णना करें। उन्होंने स्थान स्थान पर लोकों का आलय ग्रहण किया है। पद्मावती के प्रेम की तीव्रता की वर्णना चार लोकों दारा क्षैणीय हैः

**

प्रातः नाट धुनि कंठल विगाधा,
फिर के भौर लोन्ह माधवासा।
संद चन्द्र गुल बाहु उपेली,
संजन नैन उठे कै जैली।
विरह न बोल भाव गुल नाड़ै,
मारी परि बोल कीम बरियार्य।
किवैं विरह वाहन धिय कैया,
कैलिं न जांक बिरह हुल धार्याए।
उदधि समुद अभ नीण देलाए,
चुल कोटिन्तु गुल उक न बावा।
कछूट तहरिर तहरिर पर धावा,
भौर परा जिउ शाह न पावा।
सबी वानि बिण देह तो मारै,
बिउ नहीं फट नाहि डर ढरै।
किरहि उठें लित फुलौं,
सब दियं कैल क्षेल।
हीरा पानिहि फुलावूह,
साड़ो गहन निउस कैल।
**

सुकियों के प्रेम की यह विशेषता है कि कह्रे प्रेमी।

---

1- पद्मावतः वासुदेव शरण ज्ञावाल - २५५ २५५ २५५ २५५
वौर प्रिय दोनों की एक दृश्यः के प्रेम में व्याख्यात दिलाई हैते हैं। कश्यप कवयि
हो प्रियी की ब्रह्मण थी होता है पर प्रिय मत्र का प्रेम में कम नहीं। मधु मालिकें
में जहाँ मनोहर मधुमालिका की प्राणु निल दिया प्राणु निल में वह मधुमालिका
में उसके विरह में व्याख्यात है। परन्तु उसकी उपयोग मूल है। वह प्रियम की
विरह की निना में सुलग ला रहा कार कारी होगी है। बारहमारी के माध्यम से कवि
ने विरहिणी की विषय निल दिया प्राणु निल का माध्यम निर्माण किया है जिसके
नारिका के प्रेम की नीना की घोंस्त में होती है। फागुन में माध्यम वाले
बुक्स को चैत में पुनः नववस्तव निलक्षण है। समलक्षु के बाद सुलग की उपलक्ष्य
होती है। परन्तु विरहि का वैवल विरह से ही काम है। उसका सुलग कारण के
दिन सुलभ घटना है और विरह जनित सुलग कारण बढ़ना है।

"फागुन हरे जो नहं फफ्फारी,
शव भर चैल हरियारी।" १

२

"सुल दिन माध्यम घटन जो जादी,
सुल जो निचि लिखेबधिकारी।" २

कविर जाकी के भी उसी माध्यम बारहमारी के
पाल्यक्ष नागणी की विरह वेदना चित्र की है जो संयोग के निना
जे विश्व उसके प्रेम की नीना की नीना करा है।

"कार्त्तिक शत्रु चैंद उस्मारी,
जग शिऊल तौं विरह पत्तारी।" ३

---

१- मधुमालिक - मधुमालिक - ६० शिवगोपाल दिशा - पुस्तक १२२
२- , , , , , १२९
३- उक्कमार मृत - विश्वासिती
कबि उसमान ने भी बसी "विचारके में विचारके के विरह की स्थापना का सुनाने के प्रसन्न उसके प्रेम की चोरी का ही स्पष्टकरण किया है। सुनाने के चिन्त्र के कारण जो चिन्ताला विचारके को प्राणान्तर के भी विस्तिर प्रेम की वहाँ उसकी अनुसंधान में काली नागिन के खुश वामासिन होती है। पुष्प झाौंग गुलाब प्रसंग होते हैं।

"विचारके कह बोल विचारकी, जानत मई मधुमिनि कारी। पुल कारार मर पुलकारी, कहु कहु न गुलाब विरह की मारी।"

द्विकियाँ के समान वेद्याव मकर्म में भी प्रेम की तीव्रता पाई होती है। उन्हें न प्रेम की तीव्रता की स्थापना के स्वायत्त रखने के लिए ही स्वरुप देश के साथ पक्षीया के प्रेम के वापसी को भी सम्पूर्ण किया है। वैहण मनावुमानी पक्षीया प्रेम को ही अपने काव्य में न्याय देने हैं। उनका कथन है कि जो तीव्रता पक्षीया प्रेम में है वह स्वरुप देश में भी रहता है। जब हमें स्वरुप्या की भाषा वैहण मनावुमानी भी प्रेम का सर्वाधिक रुप वही स्वीकार करते हैं जहाँ प्रेमी प्रिय के विरह में अन्यायिक विविधता का अनुभव करता है। बैहण की प्रेमानुमूलि की कुर्बानी विविधता और किया वरीयन को दृष्टि है पक्षीया नाम के बूढ़ फल कतह। यह पक्षीया के बेंस बन गोप वर्षों में ही समय हैः

"पक्षीया भावे बलि चैर उम्लाप। बन बिना शहर जन्म नाहि बाप।"

-------------------------------------------------

1- उसमान कृत- विचारकी
राधाकृष्ण गणेश एह मात्र निर्विधि।
लार मध्ये श्रीराधार भावेर कविधि॥ १

इति : कैलन्द्र चरितमृत में पर्सीया मात्र को
रेर उल्लासः कहा गया है। राधावल्लभ सम्भादान के अन्तर्गत वैण्णय भक्ति के लाभ ह्योस सम्भादानों ने विन्ध्रों को पहचान प्राप्त किया है। राधा वल्लभ सम्भादान में विन्ध्र की मान्यता न छोटी न होने पर भी प्रेम में लीलन की क्षमता न हो। वहाँ प्रेमी मिलन में ही विन्ध्र की कुम्भुचन करता है क्योंकि संयोग में ही विन्ध्र श्रीमद्र श्रीमद्र कुम्भुचन का कुम्भुचन करता है। इस प्रकार मिलन में ही विन्ध्र प्रेम की लीलन की कुम्भुचन ग्राम्य और प्रयोग-तम करते हैं उसके वर्णन श्री ध्रुवद्र जो मे वालि शुद्धर शब्दों में किया है :

"न लालि न कौं विन्ध्र भो दोष
लाल प्रिया में मधु न विन्ध्रारी।
नई नई माँग नई क्वाँ कान्ति
नई नवला ननेह विन्ध्रारी॥
रहें मुख वारि जिर चिन जाहि,
परे रह प्रीति सुखें वहारी।
रहें क पाँच क गुड़हाँ जूनो
"ध्रुव प्रेम कप्त कथारी॥"॥ २

राधावल्लभ सम्भादान के समान निन्द्य सम्भादान में भी राधाकृष्ण के निन्द्य विहारी रूप को स्वीकार किया गया है, पर

**सूत्र**
1- कैलन्द्र चरितमृत - बाद लीला परिः ४
2- मधुन जुगार घन लीला (ध्रुवद्र ) व्याख्यालीला पृ १०२
वहरा प्रिया— प्रियम के समस्त आनन्द भोग सलवरी जन की प्रेमपत्ता के लिए हैं। तौफिक प्रेम के विचित्रताओं हो जाने के डर से यह प्रेम में कल्पित कप को स्वीकार किया गया है। अतः श्यामा श्याम का प्रेम यहाँ क्षण और साथ ही लोभन दोनों का भ्रमण होने वाला है।

वल्लभ ग्रन्थदासियों ने प्रेम की लोभना को स्थायित्व देने के लिए स्ककीया के साथ धातु भरकीया भाव को भी समीक्षित किया है। उनका कथन है कि पक्कीया प्रेम में स्ककीया की अपेक्षा अधिक लोभना गहनता, और टीका का आनन्द होना है। उदाहरण दर्थत्त्व हैः

```
** पुलिय तुलन भरी सब बौरी,
पति परि चिर गाभ टापौरी।

कुटि संब लाज गरी गुल कानि,
पति वासह यहाँ चुलानी।

कोउ जैवन पति ही तन हैचे,
कोउ दादी में जामन फ्य फेरे।

हरसागर प्रभु कूल विहारी,
श्रद्धा राह रस रीति विहारी।```

इस प्रकार शूली और कृष्ण मजबूत दोनों में ही प्रेम की लोभना का विकास होता है।

-----------------------------------------------
2 - हरसागर : दशम स्तंभ : ३० गृङ्ग ३३
प्रेम में कल्याण व कलिन्धता : 

शुक्री साधक और कृष्ण भक्त दोनों के ही प्रेम में 
कलिन्धता दृष्टिगण होती है। शुक्री साधकों का विश्वास है कि कल्याण 
और कलिन्ध भाव के प्रिय का ध्यान करते पर ही प्रेम में समीक्षा का 
व्यवहार है। कलिन्ध भाव ग्रहण करते पर ही प्रेमी कपन केवल देव के 
प्रति दयालु और अन्य वस्तुओं के उदासीन होना है इसे उसका जीवन निवृत्ति 
तत्काल रूप ग्रहण कर लेता है। फिर उसे किसी प्रतिदिन का साधारण प्राप्त 
प्रेम मार्ग के विचलित नहीं कर सकता। कल्याण प्रेम की पराक्रम होती 
है क्योंकि उस कल्याण में प्रेमी के रोम रोम में प्रेमस्थल का रूप विश्वास 
मानना है जब वह श्रद्धा रहता है। शुक्रीयों के प्रेम में कलिन्धता 
और कल्याण के वर्तमान होने हैं। उनके प्रेमस्थलों का सुख सदा ही 
मानन का उपहार और दुःख बनाना है। उस कलिन्धता और दुःख के प्रक- 
शिण पर शुक्री के कवियों ने उपने काव्यों में प्रेमियों के प्रेम को बहुत परिकर 
तः है, क्योंकि उसके प्राणों को को कभी कभी प्राणगत विपिण्ण- 
कार्यों में ठाल दिया है। परन्तु उन प्रेमियों को अपने निष्क विचि में 
शुक्रीयों के प्रेम के अन्तर्गत जल प्रेम से न 
छिला सके। फिर तो न जो प्रेम के इतिहास का वर्णन 
करते पर भी रचनी बनाने निष्क व ही नहीं होगा। उसके दृष्टि में मस्त 
हों जो प्रेम का सेल दुःख होते पर जो प्रेम का सेल देख लेता है वह दोनों को लोकों 
के पास जाता है।

** महिक ते प्रेम है कठिन हुलसा, 
दुःख जग तरा प्रेम बेद सेला।**
** तुलू मोर जो पैस मुख्य राणा,
गूंबन गरन बैठे को चाता।
जेठ नाहिं शीश पैस घूंल लावा,
को हिस्सों में काहे को वाला।**

पदाघि को प्रागृंज में उस कौफ़्ते कर्मण का
वाणना करता फ़ड़ता है, सिंहल दोप पात पूगने में उसे वाण भयावह बनाव
पार करते हैं। सिंहल दोप पूगने पर पाणिनी कपच्छा का यु धारण कर
उसके प्रेम की एकनिष्ठा की परीदी नेता बांधती है परन्तु रचनें उसकी
वीर के उपेक्षा—भय धारण कर लेता है। कारण, प्रेमी का तो कले प्रिय
के अविरल कहीं ध्यान नहीं जाता। वह तो निषिद्ध प्रिय प्रेम मद में
बुरा, उन्मक एवं वान्दा विभोर रहता है। प्रिय के अधित उसे नगाधिराज
कैलाश की भी बाघ नहीं। उसके लिए प्रिय ही कैलाश हैः

**मैलहै ऐ यह कही तोर राणा, बौहिं दुर्गर को भाव न वाण।
हरी के विलास काहे के कुड़च, बोहिं के विलास याथि देखि पारूँ।**

प्रेमी की एकनिष्ठा का प्रभाव प्रिय पर भी पड़ता
है, वह भी प्रेमी के वियोग में नहीं बांधने लगता है। पदाघि में पदाघि
भी रचना के योग से प्रभावित हो नियोगार्थ में जलने लगती है। रात्रि में उसे
विद्रोह नहीं कामी, शैया पर वह नैद नहीं एकी मानों किसी ने उस पर कपिल
कंठक बिखा गिर हैं। चंद्र, चंद्रन और चोर उसे एक वर्ष प्रेमी होते हैः

-------------------

2- गायत्री एकाच्य- दौर जाओ रामचन्द्र शृङ्खल - गृह ४०
2- **प्रायों**, **प्रायों** - गृह ६१
विशालिन असक्त शरीर की भस्मीभूत कर गई है। निशा उसके लिए कल्याण होगई है और उसका एक एक दाण उस का बूढ़ा : 

** कल्याण की तोहि जोग कीवा,
परिक्रमा वस गई विभोगा।
नोच न परे दूरी जो जापा,
के अवाच जानु कोई लापा।

dहि चन्द्र को चन्द्र, चोर,
दगद कर तन विंश गरीर।
कल्य के चान रीति बादी,
मिल २ भर हुए २ विंमि गारी।** १

जागे जो जह व्यंग वृर री विविध विमस्त्त होती
है। जब वह कहनी है कि न जाने कौन ली मोहिनी के वसीयूत मी हो तेरी व्यंगा
मगर में मे मी उम्मीद होगई है। उस व्यंग के रात में हो में जल लिन मी,
को महान लहस्ती हूं और पिं- पिं लके २ परहेज होगई हूं।

** कौन मोहिनी हुई हुई तोही,
जो तोहि विषा जो अपनी मोही।
बिनू अल मीन तलक जस बोज़,
वात कि महूँ कहत पिं फिं पीज़।** २

प्रम की अन्यया को प्रदशिन करने के लिए ही
दूःधियोजन जल और सीन, स्वामि नतात्र की उद्द और चांक कपल एवं प्रमार दीप और शल्म को उपमान के रूप में ग्रहण किया है। उसके उपासन प्रग के बादरूप है। जीन बने प्रम प्रारंभ के अनाते मे प्रारूढ़ का व्याप कर देनी है, चांक स्वामि नतात्र की उद्द की आगा मे र लागा रहता है जब तक शल्म को ग्रहण करता है। प्रम कपल कोष्ठ मे बन्द होकर बने प्रारूढ़ को बलि दे देता है, शल्म बने प्रगसंह कोष्ठ पर बने शरीर की वाहनी देना है। प्रजावती विश्व के कारण शल्म सहुल प्रगसंह की दीप पर जला चालनी है।

"को धनि निन्द फ़ूल होइ देता बाहा नन दीप।"
"जी न जानहू फ़ूल होइ, को बैठन नन दीप।"

प्रमन कूल मधुमालिक मे भी प्रम की उकिस्तन

इस्तम्भ है। दुःधियोजन और मधुमालिक का मिल के बाद विश्वै दोहो होता है। मधुमालिक की प्राप्ति हेतु कह गृह-न्याय कर देता है। वाण की कपल कुर्म विनाश को वर देशर होता है जाने के अशेत कर्म को जारी। उक्त प्रम की दुःख मे बहुत हेतु यह प्राण शिक्षिता भी नहीं बालरी। नाक के प्रम की शक्ति को उग्रहात भ्रान रहते हैं, परेट वाण में उसका परिवर्तन प्रम है कर देते हैं। प्रम को वहीं कहीं सम्पूर्ण करते हुए द्वा परम उज्ज्वल परत परत दुःखर नाती की बल्यम वाँच के साथ निमंत्रण है। यह प्रकार नाराज और मधु मालिक का सम्बन्ध भी उसकी बाराइक दुःख का ही फूलक है। उस प्रकार प्रमन ने "मधुमालिक" में प्रम की उकी-निकस्ता, अनन्त कर बुढ़ता के विशेष विश्व प्रस्तुत किए हैं। प्रम की प्रस्तुता

---

१०- प्रजावत- वाडुँदेव जगन ज्ञान : ३३०-३३१
के समय प्रेमी जपने शिरक्षेत ये को महत्व नहीं देता, वह तो —

"प्रथमादो गीत हाथ के लें, पाहिँ वहि मारव फू दें।"

प्रेमी जपने प्रेम को अर्थ के जन्म का नहीं वर्ण जन्म जन्मात्मक का माना है तथा नौ मधुमलिक दे प्रथम पेंट में ही मोहर कह उठना है।

"कैसे कूवर झले पे मियारी, 
मौड़ि तोड़ि पूर्व प्रीति विधि बारी।
में नौहि आघु न तोड़ि दूलारी,
तोहरे दुल मौड़ि आदि चिनहारी।
कह अगहान मौड़ि दुल लाहा,
में दिल है नोर दुल बीलाहा।
बा दिन दिन वार विधि मोरा,
लिहि दिन मोरि दस्भा हुस नोर।
बर का मधिन जो प्रीति नोर,
मौड़ि माठी नौ सातु बरीरू।

"पूर्व दिन विधिक तैयारी दी जानी नोहरी प्रीति करीरू।
मौड़ि माठी विधि क्रानि है तो शहि बराबरीरू।"

और उसी जन्म जन्मात्मक के प्रियकम से विश्वास होने पर प्रेमो का विराहित में दर्श होना स्वामात्मक है। निशि-दिन, जागुरू

------------------------------------------------------------------------------------------------

१- पौकन कृष्ण- मधुमलिक- सों शिवांगिक दिश- यू ३६
प्रिय की ही रट रही है। वह उसके हाथों किसी ने जाता है। वसी सभी कायों, स्वास्थ्य-प्रस्वास एवं जीवन मरण सभी कुछ प्रिय के हेतु ही मौजूद होने लगते हैं। प्रिय्यम के बिना वहा जीवन अस्त्र महीना होता है।

कः लम्बटा न यथा मस्त हो देशहरी।
कपड़ा माता-पिता यह राजा, वोः बिन जीवन कौने काजा।
' जोः गौ जम संजान तन जरी मद्यी किल्ल।
पना जिड़ न कठटै, महुँ मालाति कहुँछ।

मनोहर ही नहीं महुँ मालिकी मी बनने प्रेम में एक निष्ठा है। पहले नो वह प्रेम के बार-बार पूछने पर कुल बौर प्रेम दोनों की मयांदा का वर्णन करता है।

' एक विसः पीरस के वान, एक विसः कुल के बानन।
मोहि हुजङ विसः दो मर महस, कुल कुल उत्तर जी हानि।

परन्तु अब उसे शात होता है कि मनोहर उसके प्रेम में राजपाट, घरचार, लोगचा, क्षणिक और मयांदाजी को निलिपि दे भटक रखा है लो वह तजा और मयांदा का उल्लेख कर अपनी व्याख्या प्रदर्शित करता है। इसके बढ़ते से उसे अपनी जननी का शाय खन करना फ़ूटा है। वह महुँ मालिकी की फाटी बनाकर उड़ा देती है। फिर भी वह बनने प्रेम में बुढ़ है और बन बन धूमणा है। वस्तुतया उसके प्रेम की एक निष्ठा एवं कान्यना के प्रवाद रूप में दोनों का मुखद मिला होता है।

1- महुँ मालिकी- महुँ मालिकी- दो शिकागोपत फि:- ३० ३०
2- """""""""""" ६७
बसी फ़ारा उसमान कुले चित्रालियों में भी प्रेम की अनिष्टात दुर्सित्त न होती है। नायक सुजान के हृदय में चित्रालियों के चित्र दर्शन के बाद प्रेमान्वेषण होता है और अन्य बूफी प्रेम क्षणों की परति वह नायिका की प्राप्ति के लिए गुहा-न्याय कर मार्ग का भिक्षुक को जाना है। मार्ग में उसका परिस्थित अवतारण होता है पर चित्रालियों के दर्शन के बाद सुजान के हृदय देश में किली अन्य के लिए स्थान ही नहीं रह जाता। वह अवतारण के अंत्क्र प्रयासों के पतलस्थान मी उसको उर वे उदाहित रहता है। नायक के प्रेम को और वधि अनिष्टात प्रताप करने के लिए कवि अवतारणों से उसका विवाह कराकर मी चित्रालियों की प्राप्ति तक नायक को अवतारण होने की मिलाता। उसमान ने प्रेम की सफलता के केवल दुखता और अनिष्टात का होना प्रमाणित माना है। वह गुरुपर जिस पृष्ठ होने पर व्यक्ति हृदय फूल की चोटी पर भी चढ़ने की दामना रहता है:

“धीरी धीरी जो लेह पि हरी, चढ़ जाए ते हि शेष सुमेरी।”

तद्भ प्राप्ति का दूर निश्चय उस समीप ता देता है:

“ज़ेहि काम शिके कोजा, एक मन एक चित लाई।
होर हुर जो वति तक, निवार हि मिल को ताई।”

शेख रहीम ने भी करने “प्रेम सर” में प्रेम की अनिष्टात को जावर्तक माना है:

“मन की दुलिया धारिय के जो धारी धारिय सेह।
निरसल बमर ईवारि के, दर वार्सी देत।”
कृष्ण भक्ति के समान वैष्णव मंत्र भी प्रेम में एक निश्चिता और अनन्यता के पदार्पण की है। विभिन्न समग्रता के उपाय स्त्रापाप्रणक्य बैल एक दूसरे के प्रेम में उन्का रहते हैं। उनका यह प्रेम एक साथ और अनन्य है। राधा कृष्ण का वर्णार्थ प्रेम द्वारा समग्रता में स्वच्छता भाव का है और यह स्वच्छता भाव का प्रेम कुड़ुल है। कृष्ण स्वयं ही राधा के प्रेम में विभीत ही राधा राधा रहते हैं:

**प्रेमलिंग पाठ राधा भक्ति प्राप्ति मनोहर नैण।
तदापि रूढं नित्य मुख सदा श्री राधा कैंन नैण।**

बैतल्य समग्रता में भी प्रेम की अनन्यता दर्शित है। एकनिष्ठ और अनन्य भाव के प्रेम का ध्यान दर्शा और स्वाभाविक होकर ध्यान करते उठी में तीन हो जाता है। इस समग्रता की विशेषता है। यहाँ प्रेम की दुर्बलता के वाहार उसे क्रमः लोह, मान, प्रणाय, राग, व्रतराग, भाव और महाभाव नाम प्रदान किए गए हैं:

**माध्यम विकल्य है ले, हय रतिर उदय।
रति गाढ़ है लेतार प्रेम नाम कय।**

प्रेम वृद्धि प्रेम नाम, लोह, मान, प्रणाय।
राग, व्रतराग, भाव, महाभाव नय।

राधाचलम समग्रता में अनन्यता को प्रेम का जीवन ही स्वीकार किया गया है। श्री भृंगदास जी का कथन है कि प्रेम

---------------------------------------------------------------------------------------------------

1- खपल शनक, सहन हुहु- पूरे रूँ
2- बैतल्य विरिन्दमूल, मधकला- परिपूर्ण १६
बीज के मन में उत्पन्न होने ही समस्त विषय-वास्तव वास्तव हो जानी है। बिस्मा मन वृद्धावन रस में अनन्य भाव है अनूर्व वस्तु यह विषय होकर अवश्य है। अनन्य प्रस्तुति वास्तव के स्वास्थ्य धर्म ही वाह ही अनुपश्चात् बद पक्ष होता है। इस प्रस्तुति रस में बिस्मा मन फल भाग है उसकी गति मीन और नीर क्षुद्र दहन हो जाना है। उसकी रात दिन कुंडल और क्षुद्रा हो नहीं साना। वह सदैव बप्पो प्रि-प्रि प्रि के रस में विपरीत रहता है:

"अनन्य प्रस्तुति उपनी मन माहिँ,
नया सब विषय वास्तव जाहिँ।"
जगम के मूर्ति फिरे बाहारी,
वृद्धावन रस में कूरारी।"

रस में सब वास्तवों जबाही,
गीत रंग बढ़े झस नब हो।
या सभ रस पूरे मन आई,
मीन नीर की गति सुवी आई।
निधि दिन ताहि न कहु खुदाई,
प्रौढ़म के रस रहे समाई।"

परन्तु ऐसी क्षणः प्रस्तुति रस में दूर दूर और एकनिष्ठता जाने पर ही सम्पूर्ण है। इसलिए श्री व्यास जी ने कन्यका को प्रस्तुति रस के लिए अन्यायशक्ति ठहराया है। उनका कथन है कि "कथित कन्यका प्रस्तुति।"

---

1- कुरारण लता
2- प्रस्तुति
का पालन तत्त्व की धार पर चलने के आमने कठिन है, फिर भी हमें विना प्रेमी मदद बनने का अभ्यास ही ग्राम्य नहीं होता।

इस सम्प्रदाय के वाराध्य राधा और कृष्ण स्वर्य की कन्या प्रेम में निमंत्रण रहने हैं। कृष्ण राधा लोही करमानी, कदृढ़ पुष्प के लिए प्रभार बन गए हैं और राधा की रस अनुकर मानकर स्वाम धुन्दर उसे रस-प्योऽधि के मीन हैं। प्रेम की सज्ज हस्तिन में ही कृष्ण निवास हैं लक्ष्मी तो बने कौं २ हासकर दीनता का विभाजन करते हैं। महाप्रेम के रूप में तीन प्रोत हो उन्होंने उस रस दीनता का वातावरण किया है। बने ऐसे प्रेम-तन्त्र का कलोकन कर राधा की बुद्धि नहीं होती।

** प्रेम दृष्ट प्यारी प्रिया हुँग बुध बुद्धि 
बुढ़ कीन, वापस, पुन मधुम ताल रहें पाठ।
प्रेम रीति निज कार्यो बो ता में लाल प्रयोग।
कौं लश सन हारि कै, रहे राप भूव दीन।
सित होना और रस महा प्रेम रैं काल।
प्यारी रहे गीत कै देखन हूँ न देख।

** २

प्रेम के अन्य स्वामान के कारण इस सम्प्रदाय में कन्या के सिद्धान्तों की सर्पिल प्रकट नहीं है। कौन कृष्ण ही नहीं बदला राधा, सहरीण और दुवान्द भुवन सम्पूर्ण रूप में उस दृष्टी के आधीन और कन्या प्रेम में तीन है।
गुरुकुल के यही स्वप्न थे कारण इस समय में कन्या के सिद्धांतों की स्वीकारिता मान्यता है। क्योंकि कृष्णा ही नहीं बल्कि राधा, बलरामानंद और बुद्धिवन सम्मूचे रूप दे एक हीरे के खाद्य और कन्या गुरु व तीन हैं।

हरिदासी सम्राट संग्रह के कथायीं मध्य रामके ने वही एक निदर्शन और कन्या को देखा के लिए बलि जायसमुख उपराट तैयार है। उनके कुठार राधा और कृष्णा खड़ा बकरा भाप के पारस्परिक प्रेम में बुद्धिवन रहने हैं। यही प्रारंभ वर्षा सम्राट संग्रह के कथायीं में कृष्णा के कन्या प्रेम को महत्व देते हैं। जो मन श्रीकृष्णा में बुद्धिवन हो गया वह किसी तस्वीर का नहीं रहा। गोपियों के मन में भी किसी तस्वीर के लिए स्थान नहीं है। क्योंकि उनका एक मन ही नी था वह भी उनके खोपा द्वारे बनाकृष्ण के अष्ट बने गया। योग की साधना किस मन हे की जायः

""उधी मन नानी दब बिस।
एक हली को गयी वर्ण संग को वारा धी है।"

गोपियों के हुब्जी में कृष्णा का कन्या का कथान किंतु इतना के लाभ प्रशुतिट हुआ है वह उनके प्रेम की कन्या का चारू है। उनके कृष्णा ने हारिल पारी को भाकरी के घुस रहे हैं। लिए प्रारंभ हारिल पारी अनी भाकरी में लिका व्यापार हुए रहता है उसी प्रारंभ उन्होंने मन, गुरु, बुद्धि श्रीकृष्णा का वाचाय लिया है। लिए वस्तु में मन समा है उसके वर्णित कोई कार जन्म वस्तु की बचाई करता है तो दुरा लाना स्वाभाविक है।

---

१- गुरुकुल पद ४३४४
गोपियों का मन भी केन्द्रत्व है, श्रीकृष्ण में रिभर है। क्योंकि वह साधन
उन्हें कहने लगा के समान जान पड़ते हैं:

"हमारे हरि हारित की करी।
नन, श्रम, चन, नैंद नैंदन उर कह दुआ हरि करी।
जागत, धीरत, स्वपन दिवस निधि, कान्हि कान्हि जागरी।
सुना दोफ़ लागत है ऐसे ज्योति कहँ हरि करी।
हुती व्याधि हुकी है जार, केवल हुती न करी।
वह तो दुर लिखारे है की पौरी हमके मन करी।" "1

यही प्रेम की कन्या है जो दुर्र की गोपियों में
झटक्का है। लती तो वे उदव है कह उठी है:

"उधी मनपाने की वात।
दास, हुकारा हरिदृंडम अमुनकल, विषकोरा विच साल।" "2

परमानंद जी कारा लिखि पदों में भी प्रेम की
कन्या परिपूर्ण होती है:

"प्रीति नै उकह ठार मली।
वहां कहा मली चर स्मृति नाज़ फिलै लु चली कली।
के जाने ने सब विधि नागर चार चार गाहि लोग।
पाथो स्वाद मद्दर रह लोभी स्वाम धाम धौयो।।
परमानंद दास गुन सुन्दर नांदादिदुमि शानी।।
सदा विचार विषय स्त्री त्यारी जस गावत मद्दर शानी।। 3"
मीरा और रस्हान का क्रांत्य की प्रेम की एक निश्चिता को विद करना है। मीरा और रस्हान दोनों ने ही किसी प्राकृतिक क्रांत्य की रचना नहीं ही परम्परा की कृष्ण मी उन्नीस प्रस्तुति के प्रति अन्न प्रेम में मग्न होकर है। प्रेम की तन्त्रायास्था वह है जबकि प्रेमी एक वा अन्य, वह जमें और निश्चित तक हो जाता है। तात्पर्य जो कि जलस्वरूप में उसके विश्वास का निर्लक्षण नहीं होता। प्रेम की तन्त्रायास्था के तत्त्व में मीरा ने एक ग्वालिन की क़स्ता वाणिज्य की है:

"कोई स्थाय पनीर ल्योरी,
चिर धार पता किया थोली।
दधि को नौ बिसार गईं ग्वालिन,
हरि ल्योर हरि ल्योर बोले।। १ ।।
मीरा के भूस विरियर नागर, बेलि भर भन मोली।
कृष्ण रूप बृजी है ग्वालिन तौरहि जोरे बोले।। २ ।।"

रस्हान की ५२ प्रेमी की एक प्रभाविता ही उपलब्ध है पर इसका एक दौँत एक को ही एक निश्चिता में जप्त गल्ल रख्ना है। कृष्ण के पनीर ताल्लुक का वास्तवान्त कर गोपियों की विच्छिन्न दला हो जाती है। प्रभाव कृष्ण के प्रति उनका प्रेम एक निष्ठा है। प्रत्यक् राज के लिए ही देखकर वे उनकी तन्त्रय हो जाती है कि उनके प्रेम न ही उस विनियमनी, पराकाशा दे पौर तन्त्रय के धीम हो जाते हैं:

"उन्हों के सोने हाँ है उन्हों के जु बेह विवाही है।
उन्हों की धृति न जो चैन ल्योर धृति चैन कोकन ठानी है।। ३६ ।।
उनहीं संग भैलि में रखतीं थैं चुल सिट्ठ कांगी रहैं।
उनहीं बिठु क्यौं जल्डीं दूैं मीठ सी बालिय गरी आसन नौरै।

हस पकाा्र द्रूफी और कृष्ण भक्त दोनों ही प्रम को
हुक्ता, अन्नमा और एक आश्रय में विश्वास करते हैं।

प्रम में विरह का प्रमाण है।

द्रूफी के वियोग और कृष्ण भक्त दोनों ने प्रम में
विरह को वाज़क माना है। विरह के बिना प्रम का पूर्वारंभ ही नहीं
है। वियोगास्था में प्रिय समीप रहता है करं में प्रम के वातावरण का पल हवी
चलता पर वियोग में प्रिय के दूरस्थ होने के कारण प्रम को जीवन न, गति
और दामोदरा मिलती है।

मिलन में वियोग का मय रहता है और विरह में
मिलन का उल्लास। करं वियोग है वियोग उत्सव है विरह में प्रिय है मिलन की
उन्ना निरंतर वही रहते है। यही कारण है कि द्रूफी और कृष्ण भक्त
दोनों ही ने प्रम को स्थायल बनाते रहने के लिए विरह को वाज़क माना
है।

द्रूफीयों ने प्रम की पीर को वाज़क रखने के लिए
प्रिय के वियोग में जलना, कलपना, विद्वृत्त, ज्ञाना और निराश होना
वाज़क माना है। द्रूफी महाकाली जातीय ने तो प्रमाण में विरह के

२- रघुलान और घनालेक- क्षा नरो प्रो क्षा रूप ॥४॥
क्ष्या राज राजा मा जोगी।
वो निर्विशद गर्या वियोगी।
तन बिष्क मर मन बानार छटा।
वहभन्न गे मर वर जटा।
बौद्र बचन कौव चैनन देहा।
भसन बहार क्वीत तन देहा।
पेल चिनी चू मध्यादरी।
वो गोटा रुद्राय ज्ञानी।
बंधा पाटिरिदर देहः कर गदा।
खिद्री छोड़ कही गोरस कहा।
सुरत ब्रह्म देह वधाणा।
कर उद्वेदन काद्य वधाणा।
निवरि पांच लीन्ह दिर्बाना।
सप्पर लीन्ह मेह के राणा।
वला मनित साँस कही सांसि क्रण तप योग।
सिद्ध हीत दयानन्द पार पिरेड़ जेहि क वियोग।
रनसेन की योगी की केशव्युषाय नामं फळी योगियों
ए बहुत भूष साँस्य रस्यह।

---
1- फ़ाइल - देत वार्तह शरण क्यावल - १२१५
उधर पदमावती भी उसके विरुद्ध में व्याकूल होती है, उसे न रात्रि में निन्दा वालों है न दिन में झूठ मिलता है। रजनीमन के योग का भाव पदमावती पर जूझता है क्योंकि है उसकी वह दशा होती है। वह उसे नाराज कुशकाय, जब र्षी शारीरिक रूप दे व्यक्ति वर्णन हो रही है मानो कोई कीड़ा उसके तनस्य को काट रहा है। शुरू में रोम 2 में तैयार चागी लगा गया है तथा प्रत्येक रोम में विषय के कांड बिंध गया है। "" है प्रियकम। यदि वह पत्नी परिवार विनय बनकर शीघ्र नहीं बनते हो तब नहीं गर्म कहाँ मैं भरा समग्र भावना मस्तिष्क हो आयेगा। किंतु देवका के समीप आकर करना करना लिखके देश प्रियकम का वास्तव भाव हो:"

""जब यहि कविदिन वाह लो वाही।""

"दिन जुग वर विरहिनि कह चाही।"

"नौद भूक नह निषिधि ने दोऊ।"

"हिर माफि जस कलिय कोऊ।"

"रीति में सी रीति जब चाही।"

"गंगा कहाँ भरे वह चोभी।"

"वेनि न बार मैं निगिरि लोक।"

फदमावती की विंग मातना भाला है और मातना मी बहन कुंक फदमावती है। कारण कि उसने रजनीमन के योगर्षात नहीं किया, वह कुंकन में उसके विशेष कर हिरहानुभुत करती है। फदमावती की

1. फदमावत: डायो कादेव संरेखा खेलाल- पु. २६७
विश्व आवाता मार्कर्स के चमंचासारण है। उसमें एक काम विकल्प राज-श्रुगार के बुद्धि की आर्मानिक लघु निर्मित हुई है। परन्तु नागमणि का विश्व विरासन बुद्धि को विकिरण बन्धित करता है। कारण, उसमें कवि पूर्व गया है कि वह एक रात्री है। निस्त्राप में वह केवल एक स्त्री है और वह भी दादारुण स्त्री लिख गुप्ता नापत्र ला जाने पर कवान घर पर बूढ़ा बनने की बिना है कि जितना प्रेमकाम दों हार्द ना को जीत करें।

** पुष्प नकल दिये जा पर जाना। हाँ किन हार मूर्ति को हावा?
आन आग, तारी पूरी हेड़। मर्हें किन भिज को जावर दें।।**

नागमणि के विश्व वर्णन के लिए कवि ने बाराहपार का जावशय बदला किया है। प्रातुकिंक दुई सीं की निर्मित मे कवि ने बड़ी दुख निम्न किया है। बाराहपार के पाठम के अंश वेद एक स्थान पर चावली ने विश्व वात-रत्न का धन्य विकिरण मस्तकसरी वर्णन किया है कि वह ज्वली ही मन को दृष्टिभूत कर देता है। विराहिणी की विशेषता का एक धूमधारी तराशरण दृष्टब्य है:

** परशु सुनू काम दिव, बोहड घन बनदाली।**
किम कैं मेरी कौन तुम्ह? ना मर्हें पाव न पाव।।** २

दक्षी दमनीय दृष्ट को प्रेमकाम नक फूलाने ने लिए नागमणि पूरा पतिनार नक को दृष्टिभूत बदले करता बाहक है। किन्तु

---
1- चावली अथापर- ी० राजमंड्र शुकल- पृ १५२
2- **..** १५३
वास्तविकता है प्रस्तुत पृष्ठियों में :

"" फिर सौं क्यूं चैंसकरा, हे माँरा। हे भाग।
सो धनि बिहै जरि मैं। तैहि क कहाँ हम्म लग।"" १

नागमणी की विषु वेदना का भाषार वास्तव प्रश्नि
पर भी पहला है सभी ने वह जिस पत्नी के पास जाकर जनना हुँस व्यक्त
करती है वही पत्नी उसके विषु लाप के कारण दर्द हो जाता है और
जन्म पत्र रहित हो जाता है:

"" तैहि पैसी के निवर होह कै से विषु के बात।
सोई बैसी जान जरि, तरिवर होह निपात।"" २

विषु की जिन्नी अन्तरंगार्य मानी गई हैं वे सभी
नागमणी विषु में लवणत होती हैं। पृष्ठ पृष्ठ कास्यार्य के स्वतंत्र विचर
यहाँ उपलब्ध होते हैं। विषु की प्रस्तुत वज्र विमलार्य का एक उदाहरण
द्रष्टव्य है:

"" रानिहु दिवस छै हान नोर।
लागी कौन धार जिउ नोर।।
यह तन जारी हार के कहीं कि प्रस उठाय।"
झूठले विशाल उठि पर, कौल घरे जह टाप।।"" ३

शब्द प्रस्तुत विन्ता, स्पर्श, गुण कथन, उद्धार,
प्रशान, उन्माद, जलन, व्याधि और मरण के बढ़ते ही स्वाभाविक चिंता जायसी ने प्रस्तुत किए हैं।

मर्फत ने भी अपनी महुमाली में विरह के बढ़ते ही मार्मिक एवं बुद्धवृत्तियों चिंता उपस्थित किए हैं। उन्होंने विरहजन्य रूपन और श्रुत्ता का वर्णन प्रारंभ किया है। कहीं भी शास्त्रीय श्रोण के केवल विनिमय गुरु के तीन उपाधियों का वर्णन उन्होंने नहीं किया, फिर भी वारहमाध्य की पद्धति का कुतुरण करता है न मूल के। संयोग की बारबर-दात्त वस्तुधर्म विषय में दायक हो जाती हैं। कारक मान में स्वच्छ शर्तविभिन्नात वारि और श्रीमती बिरहिणी को हुसूस होगाइं हैं। जिन प्राकृतिक यात्रा-पारीं और शुभविचारों की प्राप्ति सुखी होती हैं उन्हीं की उपधियों होने पर विरहियों का हुसूस और बढ़ जाता है:

** कारक शरद चन्द्र वारा,
करी छँद वसैं विष धारा।
बिगड़ति कोक वर्णि ने बारा,
जनि मुट्टी एकी उपजारा।
शरद रैं नेहि बीलत माई,
बेहि नीतम केठ लागि बिहारे।
मोहि नन बागि बिरह पर बारा,
शरद चाँद मोहि केश कीरा।
क बिगड़ति येहि दिव्य कमसी,
बेहि हुसूस केश रौन मीठ बोले।

** शरद रैं नेहि बीलत, बेहि फित केठ निवास।
बके पाव देवारी, मोहि असी वनवास।**

---
1- मर्फत ने महुमाली में पु. २३०-२४० शिवगोपाल मिश्र
परन्तु बारहमाशि के वर्णन में मैफन का मन उन्नत
नहीं रम पाया है जिन्ना जायसि का। जायसि के बारहमाशि के वर्णन में
अहा स्वाभाविकता है, मैफन ने परीपा अनुश्रुण करने के लिये उसे अपनाया
है।

कृतनन् ने भी "मुणावती" में वियोगबित हुसूं की
उन्नत स्वर माना है। जन्म प्रसान की वार्तत जल से शांत की जा सकती है,
परे विरामित का प्रसान तो समस्त वस्त्र के जल से भी नहीं किया जा सकता।
विरास्त की वार्ति जसे स्थूल, गगन, वसुधा और श्रीनाग वादि स्वयंमित
ही उठें:

"वागि कै वृणाध खब कोई जाना,
कह न कोई वृणाध के माना।।
वौर वागि जल वीचि बुफाई,
कह न बुफाई बुहू ते बाँध।।
बुहू जरा, गगन खब जरा,
वौर बुहू जर नाखू जरा।।

"मार्दन नहीं प्रतिव उठो जो नस शिख वागि।।
हुंबुधा जरै न ऊबरे वागि विरास्त की लागि।।"

उस्मान ने वास्त्र वियोगलो में, वियोग के साथ
वियोग को भी स्वचयभावी माना है और यह स्वीकार किया है कि प्रेम
के आध्यक्ष का प्रशंसे हेतु विरास्त का होना जातराम है वहाँकि जिन्ना वधिक

---

1- कृतनन कृत- मुणावती- सो हाथ शिवापैल हिम्न - पु. २००,७०९
प्रेम होना है विरह में हुँसातुमि उन्नी ही विशिष्ट होती है। जहाँ प्रेम है वहाँ विरह भी ज्ञात है और विरह है तो तड़प, तपन और व्याघ्रण निस्त्रित है। परंतु जब विरह है वही काश्यप है और त्योहार मात्र विरह को मूल्यानु बनाये देता है

" रूप प्रेम मिलि जो हुस पावा,
इतने मिलि विरहा उफावा।
जहाँ प्रेम नहीं विरहा जानहुँ, क्षुद्र
विरह बात जनि तसह करि मानहुँ।"

उपमान ने सीवधि, प्रेम और विरह को उसमें बृहस्ति के बाधार माने हैं

" रूप, प्रेम विरहाजग्न, भूतृ बृहस्ति के भाप।"

विरहावन के बृहद्य में प्रत्यक्षित होने पर शरीर दग्ध होने लगता है। बहुत वृहाने के काश्यकृत यह जनि शरीर में धीरे-धीरे दग्ध होता है पर छुआ न देती

" विरह वैमिन उर मह शेमै, रहि स्थन जानें लोह।
खुली काठ बहुत चानियें, छुआ न परात लोह।"

विरह वीर में उन्नास के कारण कभी रोना जाता है तो कभी ही काश्य काटता है और कभी ग्वाल ही जुपान होने लगता है। उपमान ने तो निदर्शन के ही प्रेम उपासन हो जाने पर विद्यावस्था की उन्नासावस्था

1- विद्यावस्था ५० १३
2- , , १४
3- , , १६५
का घरान किया हैः

" चित्र प्रम चित्रावली हीए, माली रहै प्रम मद परी।!" ।

चित्रावली को ही नहीं वस्तु बुझार सुहान की भी विरह के कारण सुहू ऐसी ही कस्बा हो जाती हैः

" कल न वैर पल अनि विकारा, डाह पाव चिर है के मारा।" ।

प्रिय की उपस्थिति में जो वस्तु सुहाव होती है, अनुपस्थिति में वह हृदय स्थायी हो जाती है। सुहान का चित्र चित्रित रहने पर जो विकारा चित्रावली को भावना सम प्रिय की वही उसके कभी में काली नागिन के समान ज्या पुष्प वाटिका के पुष्प कैरार बन गएः

" चित्रावली कह दी चिर चादी, जानै कह ऐ पुष्प वाटिका कारी।।
फुल कैरार पर फुलवारी, फुल न सुहाव विरह की मारी।।" ।

कवि ने बादू टूट और बारह मारे के घर में जहाँ एक और कवि परिपूर्ण का निबाह किया है वहाँ दुसरी और विरह का व्य-फलन को मो दर्शाया है। कवि ने टूट का यह उदाहरण त्रस्त्व ये हैः

" टूट वर्तम नृत्न बन फुला।
जहाँ नहीं कहर कृष्ण हृद मुला।।
वाहि कहर को पुरि हमारा।।
जोहूं विन बसन वसन उहारा।।" ॥

---

1- उपमान- चित्रावली- ५० ५१
2- " " " ५७
3- " " " ५४
फलयों को लेकर हैं : 

** काफिल विरह विद्वन विकाल,  
हम तनु जब नर हृद पुलाना ।।** १

नूर मुहम्मद कृपा नन्दावती में का विरह की देखी हो कव्या प्रत्यय है। प्रिय के दर्शन के लिए प्रेमी का मन विकल रहता है। शरीर का प्रत्येक रोग प्रियम के दर्शनार्थ मानी नेत्र बना हुआ है। यही कारण है कि प्रेमी को न रात्रि में नौंद काली है न दिन में खेल ही मिलता हैः 

" दरशन दैसे कालहिं, रोम रोम मर खेल।  
नौंद न बालक निधि कहै बालक परल न खेल।।** २

विरह में उन्माद का कभी उसे रोना आता है और कभी छूटी। प्रियम के ध्यान के कारण ही वह कभी जीवित है वसन्त फल मर में ही उसकी मृत्यु निश्चित थी। यहा- 

** उन्माद सों गोवह हसल। आद्भुत धरती नीली सबसे।  
दीया रहस्य ध्यान के बालाई ना तो होत मृत फल मृताई।।** ३

शुक्लियों के समान कृष्णा आकु दिवियों ने भी प्रेम में विरह को स्वाख धारा है। प्रेम की उत्तमता का माप दंगा विरह ही है। यदि प्रिय के विषय होने पर वह प्रेम स्थायी रहे, यही नहीं विभूति उठांग।

---

१- विजयाली - गु १७३  
२- नूर मुहम्मद- नन्दावती - गु ४४  
३- **,**, गु ४४
प्रसिद्धि के समान कृष्ण भक्त कवियों ने भी प्रेम में विरास्त की खोज का मायने दर्शाया है। प्रेम का सफलता का मायने दर्शाया है। यदि प्रिय के वियोग होने पर भी प्रेम स्थायी रहे, तो नहीं विश्वास सकने की त्रस्ति का प्रेम वास्तविक समर्पण जाना। प्रिय के वियोग होने पर प्रेमी के पास वियोग की मूर्ति स्नातिक शेष रह जाती है, उन्होंने वियोग की मूर्ति स्नातिक के स्वरूप देखने पर वह शरीर की निर्भरता में मान्यताय बनने का प्रयास करता है। प्रिय की गोपियाँ भी विश्वास के दिनों में वियोग के पायें का संरक्षण करती हैं। वे कभी कृष्ण का वियोग होने पर स्वयं को लघुवादी मान कैद करती हैं और कभी काम करके प्रयास करते हैं। कृष्ण के बिना उन्हें साधारण कल्प के समान लगाता है। कल्प में सब खुश पहले जा सकता है पर सामाजिक समाय भी वहाँ का कल्प नहीं है। इस दुनिया में मानव के बिना उनके प्राणों को ज्ञात नहीं लिया।

"विधाता जी लागे दिन जान।
तुम विन नदे कुन इदं गौरुल नीसि पदर कोश समान।
पूर्ण शब्द कृपा कुन बृहि तुनिक नाहीहै कान।
अन्त म तर गौर हरी स्वात, कौं कव लागो फळकान।
है तोउ जाय काहों पाय जी मोह धरहि ह न मान।
प्रमाण मुझ तमगे दृष्ट बिन तुमर नाहीहै वैशाल।""

मानव धरोहर के मायने का भूलने के साथ प्रायः सभी
भारतीय कवियों ने साम्य स्वास्थ्य किया है। प्रूर में इस दौरे में पीके नहीं

* प्रूर गारर, नागो स्वात पद १०३१
हे। उनकी गोपियों को पशु, पति, लता, गुलम घरिला वादि की कृष्ण के विषय में व्यक्त जान पड़ते हैं। मानवीय कार्यों का प्रभाव केवल ज्ञूति पर पड़ता है। और प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रभाव केवल क्षेत्र पर है। दोनों में कुछ है कि प्रभावित भलके लगता है। कुछ व्यक्ति काम के चारों ओर दृश्य और वर्तमान का हो सामाजिक पात्र है। सुकारी कवि से उत्तर हुँकारियों स्वीकार होती हैं। सुर की गोपियों को वे लगाये रहते हैं ज्यामिति-कुंभों के खुश भ्रष्टी होने हैं वैसे उनके निमित्त प्रियम माध्यम के रहने पर वीन-ललामहाकार सर्व मनोमुक्क सही थी :

"" बिनु गोपाल सेता भिड़ी कूट।
तब ते लता लानि वनि शील, कब मई विषाण ज्वाल की।"

विशालण में तिथि स्थिर नहीं रहता। एक ही वस्तु कभी कभी प्रथम होती है न कभी प्रथिल। प्रियम में कथन्य भाव रहने के कारण गोपियों को चालक मुला लगता है न कभी उसके प्रति लेख भाव के कहलती हैं :

"" कहीं कहीं वीरी प्रग्ना प्रसारी।
वाचर रैन नाम ते कौतुक भरो बिध जूर कारी।
बाण सुति पर हृदित जानि विय चालक नाम युक्तारी।
शुद्धार्थ ज्ञु स्वागति बुध दानिक तन्यो सिंह करि सारी।""

कभी कभी उसकी नी, की की वाणी उन्हें उदीया।

---

१ - शूरसागर- कादो नात प्रका भाग-२ कार्तिक, १९५५
करती है तो वे उसके प्रस्तुति अनुभव ही उठती हैं और उसकी ख़ुददर्शिता पर
उछ भला बुझ कहती हैंः

"हैं ने मोहन के विश चर्चित, रे ने विश वारा।
रे पापी दू सौंप कहाँ, पिय पिय करि कपार नौटारा।
करी न कहूँ करहूँ सहकर की दृष्टि मृदूक बुझ कर बारा।
रे सह दू सौ बनावत कौर ना भाण हो याने पिय बारा।"

भव जग सही, हूँ जल बिनु नज़र न उर की व्यवा बिचार।
पुर स्वाम विनु भक्त पर बोलन, कहै बंगली जनम बिचार। नः

स्याम बारा वोने का कारण गोपिया उसका कृष्णा
वियोग ज्वर के पीछे होना मानती हैं। वही भवं भ्रेणाय गोपिया फ्रा
रहितप्रिये तर हेः

"देशिवन का सिंदौरा बनि करी।
बहु पापिक कहियो उन वरि जों मई विरह दुर जारिये।" नःः

पिय कृष्णा के वियोग में भी महुआ का हरा भरा
रहना वे विवर्धलया, तबसे चर भाद्र की विरह ज्वाला में रेणुका गोप-
बालार्थ भला वैसे देख सकती हैं। विस महुआ में कृष्णानंदक की प्रियार्थियों का श्राकार
किया था, जिसके निकटके में उस वेणुवाली की वेणु बना दिस्तु भाद्र मोहन एवं
वाकळक स्वर लहरियों में हृदयमान हुई थी, जिसके वच्चस्थ पर राखीलोऽ

------------------

१ - सूर्यकार - कृता । ना । सना - पत्र हृद ३५५६
२ - , , , ,

सौ ५४
मैं उस वस्त्र राश विहारी नदवर नै विझोर के चारण जाक नी खिंचियत है वहि मृत्यु वास्त्र के वियोग में हुँकिन नहीं। उसकी वह विमुखता पर, पाण्डाश्रय हद हुए यदि वे विरले बृहस्पतिवार कृपित होकर वियोगमति विमुख वे मस्मीमात्र वास्त्रों के बदल विणासन भावना वाण कोई न अकुलत निःश्चित नहीं।

"" मृत्युन हम कल रहन हरे।
विरल वियोग स्थाप संतर के ठाई बर्मी न जरे।
मौलन वेतु ब्रजवन तरुण बाला उठेरी सी।
भोजि भावर, बसू जी परम, तुम्हि जल ध्यान हरे।
बह चिन्हयि भू मन न धरत हैं, फिर २ गुलप घरे।
हुँदाव मनु विरह द्वानत, नूर-सिंह ली म जरे।""**

विश्वासिन से प्रेमोप गीतियों की उद्बोधन का वान कब्जा लाता है भयों के कृपण का सदिश ताते हैं और वाल की स्थायित्व कही नहीं, जानि माधव के परम सदा भी हैं। पर जब वे जब योग का उपके से देिे हैं तो के निलंबित उठती हैं। योग का उपके से गीतियों के दरध हद र पर गुह्य का वायर करता है। वे उद्बोध की भावा बुरा कहती हैं:

"" मृकर, यह हुस तुम के दूरर।
देियो, मृष्टिय न परस्पर राक, उदित ह न लाकी दूरर।
कब नी योग हिलवन भार, तबि हरि योवन मूरर।
विन्दुनि, भूद हैं निग, गिलि- पशचि, हद हेती मरियुर।
मो मन जो घट होत विहारी, गुकि चौं पा दूरर।
भुवारा वाल हुर- मनु दूरी, गरिशि ज्यादि निलुरी।""**

---
1- बृहस्पति- वा अनु
2- , , १९६७ - डॉ. भ्रमनरामयण टेक्न गृह ५८७
व्ययम्युणं उबिर्याँसे उदव को परास्त करती हैं। उदव के यह कहने पर कि कृष्ण को हृदय के निकाल कर योग ब्रज धारण करी, ते कहती हैं:

"इहि उर मात्र सात तोर गई।
तव वै निकाल हुनि अधी निरहि द्रव्य हुः कह।"

गोपियाँ की चक्षु निरुक्त इति विषय विषयां वन विषय कर क्षल वाती कटु उदिक्षियाँ से परास्त उदव योग का जोला उसर प्रेम को नूतनी पवित्र शुद्धिः के पास जाते हैं।

बुधे ने गोपियाँ के कस विषय व्यापारे में विषय की सभी कव्यकार्य विशिष्ट की हैं। मरण का एक उदाहरण प्रस्तुत था है:

"अनि महोदय कृष्णिकांत हुलारी।
हरिश्चं जल महोदय उर वैकल निन्द तालन घुमावति कारी।
कथसस रहिन् करन न हि चित्तवति उद्यान गय द्वारे घरिन् दुः वारी॥
इस विषय बदन दुःखितम्, अर्हो नलिनी विनिरक्त की मारी।
हरि तीर्थ सुनि सख्य मुक्त मरू वं विदारिणि हुश अविजारी॥"

गृहस्ती के प्रभावेन द्वारा प्रभावित को नूतन ने मी।
"प्रभावसलोक की रचना को है पर बुध के प्रभार गोस्वामी छठ्य ग्रन्थ का प्राधान्य है जबकि नूतन ने छठ्य ग्रन्थ को प्रथम नूतन की है। बुध की गोपियाँ उदव ।

1- दैविक दूरकारार- दि ० ठारो प्रेमसहारकारण टौन- मू १६०३
2- बुध गागर, का २० नातौ प्र २० समा, यह दि ० १६६१
के जान और योग के उपदेशों का सफ्न प्रज्ञा बनें और प्रेम बने करते हैं जबकि नंददास की गोपियाँ दक्षिण वायु-विवाद बांध। गोपियाँ की विरह दशा का वर्णन नंददास ने किया क्षय है पर बच्चे जन्मस्तंभक बन्धों में हो। उद्यव के क्रम गामन पर और न का विधान होना पर कि च प्रयास का यौद्ध लाया हैं, गोपियाँ के कृत्य ज्ञातिक अनुभवों के गुरुगुर हो जाते हैं, उनका कृत्य जाननद रस से चरावार हो जाता है, प्रयास अति जाते हैं, कठ मात्र के अभाष से कर्तव्य हो जाता है, गिरा गद्दू हो जाती है। मुस्त के क्रम भी शब्द का उच्चारण नहीं होता। इस प्रकार कृष्ण प्रेम में उनकी विचित्र दशा हो जाती हैः

** सुनत प्रयास की नाम वाहो गृह को सुधि मूलवी।
महिर वारनह रह हृदय, प्रेम बदली हुम खुशवी।
सुलक ल्राम खब यह भर पर महि वात जल नैन।
कठ घुटे गद्दू गिरा बोस्यो जात न बैन।
विवेक प्रेम की।।

** और उद्यव के कहने पर किः

** कठिन खेद नदजल की, बहूरि मःृवरी गाँधैः।
सुनी क्रज नागरी।।

* कृष्ण खेदु, नाम हे ही के नाब विमोर हो जाती हैं। मनमोहन कृष्ण के रूप की स्मृति खग ही उठती हैं। मुस्त प्रसन्न

----------------------------------------------------------------------------------------

१- नंददास प्रस्थापती - ६० राजनदास पृ. १५२
हो जाना है पर प्रेमापेन के उपस्थिति के कारण वे मुक्ति हो जाती हैं।
वह स्वयं बुद्धि वादि विचारियों मार्गों की बात चुंबत व्यक्ति हुई है।
परस्पर कृप्या के जम जम लदिश की बनलाविलिपणी गोपियाँ उदय हैं जब श्रद्धा
चर्चा सुनती है तो वे कृप्या के प्रति नीति उपार्थमर्य और क्षेत्रों की विशेषता
करती हैं। पर इसी उनके ग्यांगण विशेष समथ को शान्ति नहीं मिली, 
जिन दोन वाणिज्य जन उन कृप्या के स्तर स्तर में प्रशमन करती हैं:

"महारानी विपय मम ही दुर्गा हम सी कोरी।
बहुनाटक के रावे प्रीति न डारी तोरी॥
एक ही बार यी।" " १ ॥

"महानगर" के अन्तरिक्ष निदर्शन जो के विशिष्ट 
मैं धरी में धार्मिक के माध्यम से उन्मादिन विरहिती की मार्मिक दश की 
व्यक्ति की है तो जैसा कि मैं भाद्र शुक्लों के दरारा रूप मैं विश्वास 
वर्णित करता है। धार्मिक के उद्देश्य के दरारा विश्व वर्ण धुलियाँ 
के विश्व वर्ण धुलियाँ के दरारा विश्व वर्ण किया है। 
विश्व धुलियाँ ने अपने विश्वास की प्रेम कार्यों 
धुलियाँ में धार्मिक के उद्देश्य 
धुलियाँ के दरारा विश्व वर्ण किया है।

परमालप्रेम जो के उद्देश्य धुलियाँ ने अपने फर्जी 
में विश्व के जीव मार्मिक विश्वास किए हैं। पूर्व राग कार्य को भी विश्व 
कल्याण में परमाल के पदों में अनुवाद गया है। भ्रम पीर पे पीड़ित एक गोपी कहती 
है:

"जब के प्रीति स्तम्भ सी की।
ना दिन के पे देख नैन नैठू मी न होनी।" ॥

---
6- नन्ददास श्रीधाराली- ६० मलस राणदास- १६० २५२
कदा रहन चिन चाक चबूसी को और कहु न सुखाय।
मन में रहे उपाय मिल को है विचार नाह।
परमानन्द पीर प्रम की कादू सी न कहिए।
इसे विषय मूं काल को रोने न मन बढिए।

पूर्व राग कवस्था की इस विश्व वेदना में प्रम का
गुलकिन रूप उपलब्ध है परन्तु संयोग के बाद प्रिय के स्नायु गमन पर जो
विश्व वेदना होती है उसमें न्याय, उद्देश, जगन्न बादि मात्रों का समन्वय
होता है। इस प्रकार के विश्व का भी परमानन्द दास जी ने अनि शुद्धि वर्णन
किया है। संयोग सब तदनुपस्तत होने भी वे विश्व वेदना की उद्दीपक
कर रहे हैं। निशिदिन श्रृंगार तूल, मोर, कोकिल, पक्षा, वृन्दाविनि
की ही और बादली सभी कृष्ण विषय के दुलार हैं:

"माई री झंद लगी हुस मैन।
कहाँ वे कहाँ, कहाँ वे मौजन, कहाँ वे छुप की रेन।
तारे गिनन गई री सबे निशि तैर न लागे मैन।
परमानन्द प्रसु पिया बिहुरे ने फल न परल बिल मैन।"

काव्य शास्त्र में वरिण्त विश्व की सभी कवस्थाओं की
परमानन्द दास जी ने वर्णन कराई है: वरिण्ता का एक उदाहरण काव्य
को है:

"जब पे कोड माधी वों कोह।
तो कम कमल बन मयूर वे संग परी रहे।"

---

1- परमानन्द पद सूत्र- पड़ सौ १०२
2- , , ३२४
प्रेम ह्यारी दसा हुनावे गोपी विरह दहे।
हा खनाथ रन विरहातुर ननन नीर दहे।
बिनी कारि बलबीर धीर को चन चीरा गहे।
प्रमार्ग प्रेम विधार को स्वास्तिनि दास लहे।

कृष्ण पंक्ति के बैलम्य समस्ताय में भी संयोग की
वोकार विरह को उच्च माना गया है। कृष्णस्वामी जी ने अपने "उज्जवल
नीलम्य" प्रथे में कहा है : "" जैसे विश्वलोक विशेष: सम्प्रदानक्षिकायः"
क्याँ है विश्वलं संयोग की उन्नति करता है। कर: विश्वलं का स्थान संयोग
की वोकार उच्च तर है। जब कारण बैलम्य महास्वीत ओर उनके अनुयायियों
में श्रीकृष्ण विरह की विवृति विशेष रूप से दृष्टिगत है।

इस प्रकार बाधकाशी भूकी कवियों और कृष्ण संस्कार
ने अपने काव्यों में संयोग की वोकार विरह को प्रधानता दी है। विरह को
प्रधानता देनेके कारण ही उनके प्रेम में तोड़ता परिवर्तित है।

प्रेम में रहस्यान्वस्तन :

रहस्याद हृदय की वह दिव्य अनुभवि है जिसके
माणवेश में माणी श्योम और पार्थिव दिनोंके उस शीतों और वाल्मिक
महाविस्तन्व के साथ एकावस्था का अनुभव करने लगता है। कईने विधानां ने
रहस्याद की परिभाषाओं की बीमा में बाँधने का प्रयास किया है। बाबसे—

१— प्रमार्ग पद संस्कृत— प्र० ८९६
फोर्ड डिवर्शनरी में रहस्याद की छुट्टी उसे दे दी गई है जो तानाजीन सवा
की वाद्यालयविक अनुभव को महत्व प्रदान करता है। हालांकि इसके ने रहस्य-
वाद की परिभाषा एवं प्रकार दी है, ""रहस्याद विश्वसः यह दार्शिक
कल्पना है जिसमें स्वात्मानुकूल अपनी चरम दीपिता पर पाई जाती है। हालांकि राधा-
कृष्णन ने वाद्यालयविक का धर्म का शार कहा है और रहस्याद का सम्बन्ध
धर्म के शार कार्यों, वाद्यालयविक के स्थापत्य किया है। प्रोफेसर ने अपनी
प्रकाश ""हिस्ट्री कफ ईडियन फिलाफली"" में रहस्याद का धर्म का
विश्वसः श्लोक स्वीकार किया है।

रहस्याद की उपकुल परिभाषाओं के बारार पर
हम कह सकते हैं कि भूमिका का रहस्याद भारतीय जीवनवाद से साम्य रखता
है औजियाद ही जब अवम्बन के दौरे का परिपात तक काव्य दौरे में कवितात
सोटा है तो रहस्याद का धर्म धारण कर लेता है। रहस्याद सुखव के
विषय में शुक्ल जी अपनी जायसी ग्रंथावली की मुक्तिमा तिकने है, जब
अीजियाद का वादारे लेकर मानना या कल्पना उठ सकती होती है कार्यसं जब
उसका वादारे पाव दौरे में होता है तो उच्च कोटि के भावात्मक रहस्याद
की प्रभिया होती है।

वादात्मक रहस्याद के अपनाव, हठयोग, लैंग्र
श्लोक वाति की प्रक्रिया वाति है और भावात्मक रहस्याद का मूल मार

---

1. Spiritual Philosophy in life- pp 6
2. History of Indian Philosophy- Preface
3. जायसी ग्रंथावली- रामचन्द्र शुक्ल मुक्तिमा- pp 153
प्रेम है। इस कारण कृतियों के भावात्मक रूपकार को तात्काल्य में स्थान दिया है। उनके कार्यों में दूरी ना प्रामाण्य प्रेम ही गृहीत होता है पर उसका शीतल परम प्रकृति होता है। वीच वीच में जाने वाले संस्कारात्मक स्थल समस्त स्वभाव में उद्दी को रसिकत्व दृष्टिक प्रकट है। इस प्रकार उनके प्रेम का वाचनमुद्रा कह संदर्भणाली परम चेतना है और वाचन जीवात्मा को ईश्वर से विस्तृत होकर सदिय हृदय रहा करती है। जगत में जन्म लेकर ही जीवात्मा परमात्मा से विस्तृत हो गई उनके पहले दोनों में कोई न मौद न था। उस परम चेतना का संदर्भण समस्त जगत की स्रोत वस्तुओं में जाप्पान होता है। जाप्पान ने इस स्वर्गों की बड़ी ही माधुर्यम भाविको छोड़ी है, उसके चरणों का स्पर्श कर मानवपोर्तर निम्नलिखित होता। उसके रूप दर्शन हे दशरथ ने वही रूप प्राप्त कर लिया। उसके शरीर के बारी हुई मलय पीन की उत्तर्द मो प्राप्त कर मानव की जलाशय हुई उसे उन्हें कर्म सर्न मार्गों का प्रभाव कर पुण्यवत्ता प्राप्त कीं।

"
 कहा मानव पाँच सो पाँच , पारस रूप हयं लणि गयाँ।
 मा निसर तेन्ह पाल्म परसे, पाला रूप रूप के दर्शे।।
 पैल हरिका वाल नन गयाँ, मा शीला मा निरनि हुमाराँ।
 न बनाँ क्रोण पीन से बाज़ा, पुतिक देखा मे बाज़ा गावा।।
"

उसके परम स्वर्ग यह परमात्मा में प्रेम करते हैं उसी रूपी स्वरूपस्थिति रहने हैं जिसकी रत्नात्मा श्रेष्ठ में दृष्टिकोश कहोने वाली व्यक्तियों निर्मल हुई तथा ज्योत, बनथ, नरात, रस, हीरे।

---------------------------------------------
1- पयमान- परहसीतरण अयात- पु. ६४।
माणिक्य तथा मोनी वादि जिसके दर्शनों की ज्योति से ज्योतिलिंगानु हैः

"वेंचि दिन उक्त ज्योति निर्माण, कहिंत्ना ज्योतिर होई माह।
राय, रथ, नक्ष, दीन्हिलोही जोहिन जोहिन, रत्न मद्याय माणिक
मोनी।।
जहाँ जहाँ विरूढ़ि सुभाषि हैथि, तह तह जिन्हि ज्योति
परस्पर।।

उस सौंदर्य की विमुक्ति का जान जब मानव को हो
जाता है तो वह उस विमुक्ति से प्रेम किये बिना नहीं रहना। कारण सौंदर्य
के प्रसन्न मानव का सहा आकर्षण होता है वो उसकी प्रसन्न आकर्षण हो
जाने पर वह उसी के लिये मरने की कामना करता है वो उसी के लिये जीवित
रहने को। गृहपति जब रचणेन से सिंहलीप के मार्ग की क्रतिनायकों का वर्णन
करता है तो रचणेन कहता है कि वे गृहपति यह मन शक्ति की शीमा है पर
बिंके हृदय में प्रेम समुद्र विलोकन ते रहा है उस जीवन को मो ब्रह्म बिलम्बा?
वो पहले हो गिर देकर उस मार्ग की बीर कपास होता है, मुला मुन्यु ही
उषा ब्रह्म बिलम्बा इसके हैं? मैं चुराक का परिप्रेक्ष्य का वीर हुस्न का
ताल लेकर विहार की बीर प्रथम किया है विचारे प्रेम समुद्र के दर्शन कर लिए
हैं उसके लिये 3 विज्ञात के मार्ग में पड़ने वाले वारे समुद्र तृण सम हैः

""गृहपति यह मन चक्कर चीकः, प्रेम ते हिलेम नेहि चीकः।
जो पहले चिर के पुरुष धरान, मुर के चिर पीड़ित का करै।।
भूख संकलिप हुस धरार लीनें, नौ प्रमाण चिह्न छाई कोन्हें फ़ा।

**१**
वी जाँड धर्म फैंस कर देता, जाँड यह धर्म फैंस बचा देता।

विश संदेह के हेतु प्रेमो मानण व्यौहार करने के
लिए नन्द संदेह हुआ है। उसका संदेह प्रेमी के कण कण को लिंग किया है।
ध्यान जगत आकाश के नवाचत जलाश्रय की शाखाय भरी दी बात की साहित्य
देने हैं।

"प्रेम नक्स जब आ जाता नगर, है यथा यथा नलिका के होने
ध्यान वात अत्याचार राक्षस, साधना ठारी देह है यथा धारी।"

**२**
उस मानण का प्रेमी पर जन्म लेना ही जाप्ती क्षण
मानने हैं जिसे प्रेम प्यार पर शीर्ष नहीं नवाया।

"जाँড नहीं लिए प्रेम प्यार, जो दिलियो यह कहे को बाता।"

प्रेमी पर जन्म लेने की साधना को सिद्ध करने के लिए ही जाप्ती ने प्रेम
को उस उच्चास्वर का वरण किया है, जिसको रन्न दे राम के युग के
पदमावती का रूप वरण दुनिया मानण कर लेता है।

"दुनिया महात्मा गया जलाश्रय, जानहुँ लहरि सुरुज के वाह।
परा तर प्रेम धर्म वावरा, लहरि हर होई विश्वार।
विशं भंवर होई चलवर देश, तिन जीव हिलोरह छें।
सिनहि निपाधु बुझु जिउ जाव, सिनहि उठ निखरे बौररह।
सिनहि पीतन सिन होई मुस रेना, सिनहि चेन सिन होई केना।"

**३**

1- पदमावत- वाघराकाद अध्याय- पृष्ठ ४५२
2- जाप्ती मापाली- वाचार्य रामचंद्र शूकल- पृष्ठ ४३
3- **...** ४६
कः प्रेम की मानवाविश्वास्मा है विष प्राप्त कर साधन मानता माण ने की और आन्दर होता है।

चाकर के सभान शक्ति के उच भविष्य शैवत का उपमा दृष्टि में व्याप्त मानते हैं। इस समस्त जगत में उसी स्क परम्परा की ज्योति सियो है। कर्म शक्ति ने प्रेम का रूप ही जड़ और सम्पूर्ण दृष्टि में व्याप्त दिनाकर जगत और प्रेम की रंगना का परिवर्धन दिया है।

"अवश्य खिंचु बोध जीवन सारे, बाजु न देलिस तोहि जीवन हारे।
देसन ही परिवारा तो ही, रहने रूप ही वन देन्द्रयो मोहि।
अहे रूप तो कहे तिमाना, अहे रूप से सितिं सभाना।
"


dहे रूप जल भोल जीवन महिवर, मातृ आया देवात।
बाजु भासन जो देसे, को कहु देसे पात।"

उपमा की चित्रापली और दूर मुहम्मद की इंद्रापली
मैं भी रहस्यार्थका का क्षमता नहीं। दृष्टि के सौंदर्य को देखकर साधन वाक्ष्पत होना है और उसके कहा के रूप का स्मारण करता है।

"के दिक दित्र अर्धित लेनिराति, दूर रूप भोलि धीमान हारा।"

"दूर मुहम्मद" की "इंद्रापली" का सौंदर्य की
उपलं भविष्यावशाली है कि वह दिक और दृष्टि ठाकर नहीं संसार से निवृत

----------------------------------------

1- शक्ति कूल- पद्मावती- सौ शिकारपाल फिंग - पृ. 48
2- चित्रापली
है जाना है। कह उन्नी जैन्दर्वाली है कि उनकी सब बिना देख ही सराहना करती है।

" जो काहून पर डोरे ढीली, चोचन देख जगम दिखि मोठी।
भस कुंवलनी सुन्दर बाँझ, बिनते देख सब नाहि दरहा।" को १

उसी की ज्योति के पूर्व, चन्द्र तर नवाजु प्रकाशित है। रात्रि करने सुबह नेत्र बली नाली के उद्वत्र का जीवन निरंतर हैं:

" है तेहि चन्द्र बदन लसि, जगल नयन उबारार।
गण भस्म लोचन की निरंत्र तेहिक हिंगार।" को २

सुफियों के समान कृष्ण मधुक शास्त्र के कवियों
ने भी रसस्वादी प्रणय गुला मधुक को बने काव्य में स्थान दिया है।
शब्द को बिस वर्षाना शब्द तो सुफी काम लेने हैं, कहीं मधुक कृष्ण मधु
कवियों में भी दिलाई देती हैं। कृष्ण मधुकों ने कृष्ण तथा गीताविदों के हुए
ने में सब धर जीवार्त ने का वर्तना की है। एक पत्र में दुरसार जी कहते हैं:

" मधु के जापाल धिरायो।
सुफी पुराण तैल के कार्य जानी वालमि भेद करायो।
जल फल जहाँ रहे हुम बिनत नाहि भेद उपनिषाद गायो।
है ननु जाव अह हुम हुम दोई गुह कार्म उपाधाय।
मधु रुष विनीत नहीं कांठ न्या मन तिया जानाय।
दुरस्थ नमुने देसि कलप हैं कहि लानसं भुं मतायः।" को २
यदि यह रहस्यात्मकन भावना धीरीं में अवश्य है पर जन समुदाय में यह मानना लुप्त भाव ही यही की। इस कारण यह कहना जत्म न होगा कि दूहकियाँ ने अथवा भक्त मानने को रहस्यात्मकन का बाधार भावना बहीं वर्तु उनकी पुष्क्रु पुष्क्रु भावनायें ही जो समय पाकर प्रकाश में बाई।

निष्क्रियः

कन्: दूहकी कवियों और कृष्ण मन्नों की प्रेम-पद्धति में प्रमाण साम्य है और इसका कारण है उनके लक्ष की सफई है उसकी साधन पुष्क्रु र है। तभी जो दोनों की प्रेम पद्धति में माहात्म्य सध्य दृष्टिगोचर होती है। उपर्युक्त प्रेम की कल्पना प्रेम में परिणाम पर दोनों सम्प्रदायों में बल दिया है। प्रेम के सम्पर्क वाह्य विद्या विधानों का जो लिखि करण सूक्ती प्रेम काव्यों में उपलब्ध है वहीं कृष्ण मन्न काव्यों में है। ऐसी प्रकार दोनों ने प्रेम में नोब्रत, अन्युपमा, एकत्वता स्त्र वर्त्योग के अविकल विद्या का प्रधान द्रोह है। कृष्ण मन्न कवि रहस्यवादी नहीं कहा इसके किन्तु फिर भी प्रेम की रहस्यात्मक ने विनिमय में वे दूहकी कवियों के साथ स्वर मिला देने हैं। वस्तुतः दूहकी कवियों और कृष्ण मन्न कवियों की प्रेम-पद्धति के झोप पुष्क्रु पुष्क्रु होते पर भी दोनों में माहात्म्य साम्य है जो दोनों को एक दूहके के निकट तल्प से समेत है।